पारिजात के फूल

विमल राजस्थानी

स्नेह-सिन्धु

अभिनव जैसे प्रतीत हुए

श्री मोदी जी को

विमल राजीवाल

3 मार्च '७८.

पारिजात के फूल

राजस्थानी पुस्तक-मंदिर
बेतिया

प्रथम संस्करण : अगस्त १९७६
मूल्य : दस रुपये

पारिजात के फूल
(कविता)

प्रकाशक
राजस्थानी पुस्तक-मंदिर
बेतिया (पश्चिम चम्पारन)
बिहार

वितरक
विश्वविद्यालय प्रकाशन
चौक, वाराणसी

मुद्रक
स्वस्तिक मुद्रणालय
गोलघर, वाराणसी

Publishers
Rajasthani Pustak Mandir
Bettiah (West Champaran)
Bihar

First Edition : 1976

Parijat ke Phool : Poems : Vimal Rajasthani
First Edition : Price Rs. 10/-

'पारिजात के फूल' का कवि

मुझे यह कहना है

'पारिजात के फूल' मेरी दीर्घकालीन काव्य-साधना का प्रतिफल है। सन् १९३४ से '३६ वाले समस्यापूर्तियों के काव्य-कौशल के परीक्षण-काल से गुजर कर मेरा बाल कवि आज अपनी प्रौढ़ावस्था में जिन विभिन्न मनःस्थितियों तक पहुँचा है, इसका आभास, मेरी इन नयी-पुरानी; गिनी-चुनी कविताओं में; आप पा सकेंगे।

प्रस्तुत रचनाओं में कुछ व्यक्तिगत, सीमाबद्ध और आत्म-भोगी रचनाएँ भी आपको मिलेंगी। कतिपय विचारकों की इस वर्जना को कि कवि को आत्म-भोगी स्थितियों को वाणी नहीं देकर समाज-भोगी स्थितियां को स्वर प्रदान करना चाहिए---मेरे कवि ने, विनम्रतापूर्वक, अस्वीकार कर दिया है। समाज-भोगी स्थितियों को अपनी बौद्धिक सहानुभूति के द्वारा आत्म-भोगी बनाकर प्रचारात्मक साहित्य का सृजन करना मैंने नहीं चाहा है। कविवर 'बच्चन' के इस समानार्थी कथन से मैं शत-प्रतिशत सहमत हूँ कि जो व्यक्तिगत है, सीमित है, आत्म-भोगी है उसे सर्वगत, सार्वभौम और सर्वभोगी बना देना ही कला का लक्ष्य है। मैंने अपनी रचनाओं में कला को इस लक्ष्य तक ले जाने के प्रयास भी किये हैं।

पीड़ाजन्य आँसुओं से धुल-धुलकर मेरे कवि के मन-प्राण सदैव निखार पाते रहे हैं। इसीलिए ये आँसू मुझे अतिशय प्रिय हैं। मैंने चाहा भी है कि विश्व की समस्त पीड़ा, संसार के समस्त आँसू और उसका दुख-दर्द मेरे अपने बन जायें, तभ तो उन्हें अपने आँसुओं में घोल-घोल कर मैं अपने गीतों में सहज मिठास भर सकूंगा।

'बच्चन' जी को कही पंक्तियों को यदि मैं अपनी बोली में यों कह दूँ तो शायद यह बात महाकवि 'शेली' के इस कथन को कि—Our sweetest songs are those that tell of saddest thought.—चरितार्थ ही करेंगी :—

"जिन सकरुण गीतों में कवि निज दुख रोते हैं
वे ही गीत अमृत से भी मीठे होते हैं"

प्रस्तुत गीतों में अधिकांश ने आधी रात को जन्म लिया है। कई बार ऐसा होता है कि गहरी नींद में अचानक किसी गीत का मुखड़ा या एक पूरा का पूरा पद ही, उच्च स्वरों में, गाने लगता हूँ कि नींद खुल जाती है और जागने पर भी मैं उन पंक्तियों को सस्वर दुहराये जाता हूँ। संभव होता है तो गीत उसी समय सकलेवर हो जाता है या फिर और किसी समय। ऐसा क्यों होता है—इसे तो कोई मानव-मनोविज्ञान का ज्ञाता ही बता सकता है।

प्यार की असमर्थता कितनी सकरुण होती है- मेरे कुछ गीत इस तथ्य के भी साक्षी हैं। 'बच्चन' जी के ही शब्दों में शायद घटनाएँ तो अपनी कीमत ले गई, उनकी स्मृतियाँ भी अपना मूल्य उगाह रही हैं।

मैं अपने जीवन के पचपन वर्ष आगामी धनतेरस १९७६ को पूरे करने जा रहा हूँ। संकलन में संग्रहीत पचपन कविताएँ इसी बात की ओर संकेत करती हैं।

पारिजात के इन फूलों की सुरभि से आप कितनी मात्रा में सुखानुभूति सहेज-बटोर सकेंगे—मैं नहीं जानता। किन्तु, मैंने अपने कवि को जब इनकी सुगन्ध सौंपी तो उसे रस-विभोर होते अवश्य पाया है। यह मेरी सहज, निर्दोष स्वीकृति है, दर्प किंवा अहंकार नहीं।

प्रस्तुत संकलन में रचना-काल तथा समय-समय पर लिखी गयी विभिन्न भाव-धाराओं की कुछ अगेय रचनाएँ मैंने जान-बूझकर, इस उद्देश्य से, पिरो दी हैं ताकि सुधीजन मेरे कवि के विकास-क्रम से परिचित हो सकें।

'प्रोग्रेसिव'—कहे जाने के लोभ में, वादों-विवादों के चक्र-व्यूह में पड़ कर 'अभिमन्यु' बनना भी मैंने नहीं चाहा है। 'युद्ध' के मैदान मुझे उतना आकर्षित नहीं करते जितना 'तारों भरा आकाश'।

'आत्मा का व्योम' शीर्षक कविता के भावों को आत्मसात करने के पूर्व राष्ट्रकवि 'दिनकर' की गद्य-पुस्तक 'मिट्टी की ओर' (पृष्ठ १० को) देख लेने का आग्रह मैं आपसे करूँगा।

'वासवदत्ता और चाँद की जलन' के अंश विशेष को चख-चौंककर मुँह बिचकाने के पूर्व यदि आपने विश्व के सर्वश्रेष्ठ महाकवि कालिदास से कैफियत तलब करने की सच्चाई भी बरती तो मैं स्वयम् कटघरे में खड़े हो जाने का विश्वास आपको दिलाता हूँ।

कतिपय महाकवियों के स्नेहाशीषों से मैंने 'पारिजात के फूल' को महिमा-मण्डित करने में अपनी मानवीय दुर्बलता का परिचय नहीं दिया है। अन्य स्वयम्-सिद्ध कविवरों की बात तो मैं नहीं करता किन्तु, मुझ जैसे साधारण कवि के लिये इन आशीर्वादों का महत्त्व बहुत अधिक है। शारदा के इन वरद-पुत्रों के आशीर्वचन मेरे लिये माँ सरस्वती के वरद-हस्त के पावन सुखद स्पर्शों जैसे ही तो हैं।

अन्त में यदि मैंने प्रस्तुत संकलन की प्रकाशन-व्यवस्था में अपना अमूल्य सहयोग प्रदान करने वाले परम अनुरागी कृपालु अग्रज श्री लक्ष्मीशंकर व्यास तथा श्री मोहनलाल गुप्त ('आज'—वाराणसी) के प्रति अपनी असीम कृतज्ञता ज्ञापित नहीं की तो क्या मेरा कवि स्वयम् को कभी क्षमा कर सकेगा?

बेतिया-वासी सदय और सुलझे विचारों के महत्त्वाकांक्षी तरुण श्री बनवारी लाल चौधरी को, जिन्होंने अपने दिवंगत पितृव्य—श्री, स्वतन्त्रता सेनानी सागरमल चौधरी की पुण्य-स्मृति को अक्षुण्ण बनाने के उद्देश्य से हिन्दी-भाषा की सर्वश्रेष्ठ विज्ञान तथा साहित्य की पुस्तकों पर पच्चीस हजार रुपयों का एक द्विवार्षिक 'सागर पुरस्कार' देने का शुभ संकल्प लिया है तथा इस संकल्प का बीजारोपण प्रस्तुत संकलन के प्रकाशन में आर्थिक सहयोग देकर किया है, मात्र स्नेहाशीषों के और भला मैं दे ही क्या सकता हूँ?

विमल राजस्थानी

बेतिया
(पश्चिम चम्पारण)
१९७६

स्वतन्त्रता-सेनानी स्वर्गीय सागरमल चौधरी बेतिया (पश्चिम चम्पारन) जिनकी पुण्य-स्मृति में उनके उदार चेता भ्रातृज श्री बनवारी लाल चौधरी ने पच्चीस हजार रुपयों का नकद द्विवार्षिक "सागर पुरस्कार" हिन्दी भाषा की सर्वोत्कृष्ट विज्ञान एवम् साहित्य-कृतियों पर क्रमशः प्रदान करने का शुभ संकल्प लिया तथा प्रस्तुत संकलन के प्रकाशन में उदारता पूर्वक आर्थिक सहयोग दिया ।
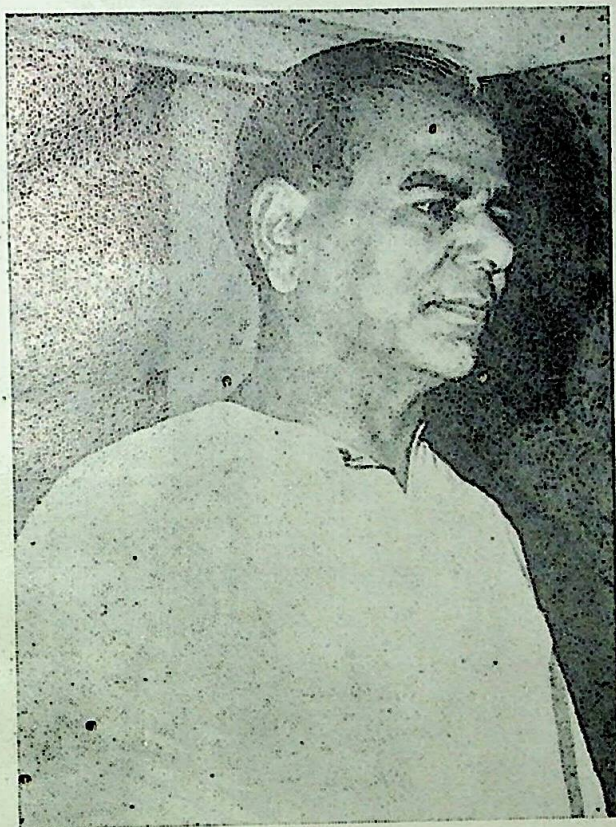
स्वतन्त्रता-सेनानी स्व० सागरमल चौधरी

अपनी 'रेणु'

को
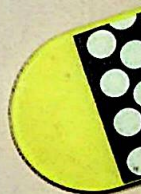
आशीर्वचन

- महाकवि निराला
- राष्ट्र कवि दिनकर
- महाकवि सुमित्रानन्दन पंत
- महाकवियत्री महादेवी वर्मा

INDIAN ARTS LIMITED

कला मन्दिर

"निराला" जी की सम्मति

मैंने कवि श्री 'विमल' राजस्थानी की
[illegible] रचनायें उनके मुख से सुनीं। मुझको हार्दिक
सन्तोष हुआ, कवि के गले में जैसे रचनाओं में भी
[illegible] भरी हुई है। पढ़ कर नवजवान सौन्दर्य और शक्ति
की तरफ [illegible] खिंच जायेंगे। मुझमें कवि की
रचनाओं से पूरा पूरा विश्वास बंधा। आधुनिक युग
के ज्योतिष्क इसका फैसला देंगे। बिहार की दिन पर
दिन होती हुई उन्नति चकित करती है। मैं अब
लिखता नहीं, पिछला अंग्रेजी अभ्यास जगा रहा हूँ
फिर भी तत मुझको रचनाओं के रसीलेपन ने लेकर
रक्खी है यही विश्वास मैं हिन्दी के पाठकों को
दिलाता हूँ। नाम लिखने वाले प्रयाग विश्व विद्यालय
के ग्रेजुएट श्री मदन मोहन सिंह हैं।

मदन मोहन सिंह

ता: २५: ६: ५१

७२० ए कला-मन्दिर
दारागंज
प्रयाग

अनुक्रम

□

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	१६	खिलखिलाया	खिलखिलाये	४१	१५	नंद	नंदन
१६	१९	द्रपदा	द्रुपदा	४१	२१	हू	हूँ
३२	४	टट	टूट	५९	७	सम्पुटो	सम्पुटों
३२	११	अधनगों	अधनंगों	६५	११	पखुरी	पंखुरी
३९	२१	हो	ही	६७	१८	कर	का

पारिजात के फूल

□

वाणी-वन्दन

भारती ! जय भारती !!
कोटि-कोटि कल्पनाएँ
कोटि-कोटि भावनाएँ
रूप-श्री सँवारतीं
भारती ! जय भारती !!

सहज, स्निग्ध, सुरभि-स्नात
वासन्ती कनक-गात
फैला हिम-हेम-चीर
रूप-रंग वारती
भारती ! जय भारती !!

पाकर तव स्नेह-दान
बनता मानव महान
अन्तर-छवि निखर-निखर
अग-जग में गयी बिखर
सुन्दर, शिव, सत्य, विमल—
कमल-दल उघारती
भारती ! जय भारती !!

जीवन-अम्बुधि विशाल
तिरते स्वप्निल प्रवाल
सस्मित हो महाकाल
चरणों पर शीश डाल
सरबस लुटाता ज्यौं—
मनसिज पर मालती
भारती ! जय भारती !!

कवि के शत नमन गहो
वाणी में बसी रहो
जीवन की धरती पर—
सुरसरि-सी सदा बहो
अन्तर की शिरा-शिरा
वन्दना उचारती
भारती ! जय भारती !!

'वसंत-पंचमी'
२८।२।१९५५

मुझको प्रकाश दे दो

मुझको प्रकाश दे दो
अपने करुण नयन का मुझको प्रकाश दे दो
मुझको प्रकाश दे दो

छाया घना अंधेरा, प्रभु ! दूर है सबेरा
डाले हुए है "षट्-रिपु" औ' "अष्ट-पाश" घेरा
अपने अरुण अयन का टुक भ्रू-विलास दे दो
मुझको प्रकाश दे दो
अपने करुण नयन का मुझको प्रकाश दे दो

प्रभु ! रोम-रोम में शुभ, शुचि भक्ति-भाव भर दो
पद-पद्म पर निछावर श्रद्धा अजर-अमर दो
अपने विराट मन का शाश्वत विकाश दे दो
मुझको प्रकाश दे दो
अपने करुण नयन का मुझको प्रकाश दे दो

प्रभु मुक्त-हस्त से, हँस, करुणा लुटा रहे हैं
भव-सिन्धु—संतरण को तरणी जुटा रहे हैं
दुर्भाग्य हाय ! माया के क्रीत-दास बनकर
भव-चक्रवाल में पड़ हम छटपटा रहे हैं
तुम कोष हो कृपा के, सागर क्षमा—दया के
शत—दल कमल—सुमन का हिम-हेम-हास दे दो
मुझको प्रकाश दे दो

अपने करुण नयन का मुझको प्रकाश दे दो
अपने विराट मन का शाश्वत विकाश दे दो
मुझको प्रकाश दे दो

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
१९६०

टहनी

मैं टहनी हूँ पारिजात की
प्रथम-प्रथम मुझको ही चूमे अरुण किरण स्वर्णिम प्रभात की,
मैं टहनी हूँ पारिजात की

भोला पंछी बात न माने
स्वर्ण-किरण को तिनका जाने
ज्यौं-ज्यौं चंचु खोलकर भागे
पंछी पीछे, किरणें आगे
चंचु खोल ज्यौं वन-वन लांवे एक बूँद के लिये चातकी
मैं टहनी हूँ पारिजात की

मुझ पर पंछी झूला झूलें
चहकें, फुदकें, सुध-बुध भूलें
ठोर-ठोर से जब मिल जाती
मैं झुक, झूम-झूम इठलाती
ठहर-ठहर कर फर-फर फहरे हरी चुनरिया नये पात की
मैं टहनी हूँ पारिजात की

सम्मुख नील झील का दर्पण
छाया लगती सहज समर्पण
जल-पंखों पर तिरते बादल
बज उठती बूँदों की पायल
ले जाते हैं मेघ उड़ाकर चादर तारों जड़ी रात की
मैं टहनी हूँ पारिजात की

जब-जब मलय-झकोरा आये
मेरा अंग-अंग गदराये
झिमिर-झिमिर-झिम बदरा बरसे
अमृत झरे पूनम-गागर से
तारों से चर्चा करती हूँ वन-वैभव की बात-बात की
मैं टहनी हूँ पारिजात की

पात-पात जब झर जाते हैं
सब शृंगार उतर जाते हैं
पंछी लेते नहीं बसेरा
हट जाता बाँहों का घेरा
नील झील के दर्पण में परछाँही हिलती नग्न गात की
मैं टहनी हूँ पारिजात की

२५।७।१९७६

ओ वर्षा के पहले बादल !

ओ वर्षा के पहले बादल ! मेरी 'दुपहर' पर मत छाना
जो पीछे आ रहे उन्हें भी मेरी यह बिनती बतलाना
ओ वर्षा के पहले बादल !

यह 'दुपहर' तो बहुत भली है
'उपहारों' के संग मिली है
अति सुखकर, अतिशय शीतल है
जलते जीवन का सम्बल है
तिल-तिल जलते देख मुझे तुम मत करुणा के कण बरसाना
ओ वर्षा के पहले बादल !

इसकी तपन बहुत मीठी है
इसकी आँच बहुत प्यारी है
मेरी यह 'दुपहरी' अनूठी
जग की दुपहर से न्यारी है
प्रिय की यह प्रिय देन इसे तुम छाया भी अपनी न छुलाना
ओ वर्षा के पहले बादल !

प्रिय ने दी यह आग कि जल-जल—
कर जग में प्रकाश फैलाऊँ
दर्दों की दी बीन कि गा-गा—
कर दुनिया का मन बहलाऊँ
आँसू दिये कि खुद प्यासा रह सीखूँ जग की प्यास बुझाना
ओ वर्षा के पहले बादल !

यादों की कौंधों के आगे
तेरी बिजली फीकी - फीकी
हिम से भी शीतल मन वाला
जलन भला क्या जाने जी की
विरह-यज्ञ के हवन-कुंड की इन लपटों को मत पी जाना
ओ वर्षा के पहले बादल!

६ अगस्त, १९७६

थरथराते होंठों का गीत

आज जी भर प्यार कर लो ओ सुहागिन !
क्या पता यह रात रसवन्ती पुनः आये न आये
निमिष की ही सही घन - शशि - दृग-मिचौनी
क्या पता छवि-छाँह का यह खेल फिर खेला न जाये

तारकों के छवि-निकुंजों की लुनाई
चाँदनी पूतों - फली, दूधों नहाई
आज तो सम्मुख खड़ी छवि-दीप बाले
श्याम घन-कुंतल उरोजों पर सँभाले
आज तो घन-छाँह देती है निमंत्रण
क्या पता मधु मेघ ज्योतिस्गात फिर छाये न छाये

कूकती कोयल, हुई है रात आधी
हो सकी पूरी न अब तक बात आधी
थरथराते होंठ चुम्बन के चितेरे
तप्त तन-मन को सुलगती प्यास घेरे
आज तो रति-पति निछावर प्राण-पण से
क्या पता कल केलि की सौगात फिर लाये न लाये

काल का रथ-चक्र क्या रोके रुकेगा
पंथ थकता है न, पंथी ही थकेगा
बाँध लो इन भागते छद्मी क्षणों को
गूँथ लो गल-हार में जीवन-कणों को
आज दिशि-दिशि में निनादित वेणु के स्वन
क्या पता कल यह विहंगिनि प्राण की गाये न गाये

विवाह की छब्बीसवीं वर्ष-गाँठ पर
१८ फरवरी, १९७६

इठला-इठला सावन बरसे

दो जोड़े नील नयन बरसें
ज्यौं काजर कारे घन बरसें

पा विरहातप पीड़ा पिघली
बन बूँद-बूँद बाहर निकली
सुधियों की बिजली चमक-दमक—
कर रही विभासित प्रेम-गली
दर्दों की तप्त दुपहरी में
इठला-इठला सावन बरसे

भोला मन बात नहीं माने
छलना को सहज सही जाने
रेतों के दामन को सौंपे
अनमोल मोतियों के दाने
यह बात हुई कुछ ऐसी ही
मरघट में ज्यौं जीवन बरसे

यह देश नहीं दीवानों का
अल्हड़ प्रेमी मस्तानों का
है प्यार पुस्तकों का कैदी
जग वैरी है मुस्कानों का
नोटों की खिर-खिर प्रेम-गीत
छवि के शव पर न सुमन बरसे

कुछ ऐसा कर मंजीर बजे
इस जीवन की जंजीर बजे
खुलकर यह प्राणों की वंशी
गहरी यमुना के तीर बजे

उस ओर नाव का रुख कर दे
दिन-रात जहाँ गुंजन बरसे

उस बगिया में ले नीड़ बसा
जिस बगिया को नंदन तरसे
सौ-सौ स्वर्गों का मन तरसे

७।११।१९७३

नरम्म फूल की पंखुरी से

जले ये रसीले अधर क्यों
बजाये बिना बाँसुरी से

नयन ने पखारे ही तो थे
चरण वे गुलाबी-गुलाबी
नयन के दुलारे ही तो थे
नयन वे शराबी-शराबी
निछावर किया था खुदी को
बिछाया था तलवों तले दिल
तराशा गया फिर हृदय क्यों
नरम फूल की पंखुरी से

गरम साँस के बाजुओं में
सिमट कर समाया न कोई
धड़कते हुए दिल को दिल से
दबाने भी आया न कोई
दिखा कर अधूरी अदायें
उमड़ रह गयी थीं घटायें
पड़े अपने आँसू ही पीने
भरी अपनी ही अंजुरी से

३।१।१९७३

कंकर घुल जलजात हो गया

सारी रात कटी आँखों में, हँसते-रोते प्रात हो गया
लाल हुई आँखों की लाली से ही लाल प्रभात हो गया

तुम क्या जानो कितनी गहरी ठेस लगी इस कोमल मन को
आहों की आँधी ने कितना झकझोरा प्रसून-जीवन को
यदि विश्वास न हो तो अम्बर की बिखरी करुणा को देखो
पिघला गयी परायी पीड़ा उज्ज्वल-कज्जल-श्यामल घन को

कजरारी आँखों का काजल घुलकर काली रात हो गया
छलक-छलक उठना नयनों का झिमिर-झिमिर बरसात हो गया

जीवन-बीन पड़ी थी गुमसुम विश्व-कक्ष में एक किनारे
बीत रही थीं दुख की घड़ियाँ, आँसू पी-पी, गिन-गिन तारे
चौखट चूम लौट आया था मन प्रीतम को बिना पुकारे
तभी किन्हीं अदृश्य हाथों ने हँस, वीणा को दिया बजा रे

जनम-जनम का वैरी उँगली का हल्का आघात हो गया
व्रीड़ा-जन्य हुआ अरुणानन संध्या को सौगात हो गया

झूमी डाल, पात भी थिरके, फुनगी तनी बनी गर्वीली
फूल खिलखिलाया, कोमल कलियाँ भी हुईं और शर्मीली
मन-कोयल कूकी, सपनों की उड़ीं तितलियाँ-नीली-पीली
तभी बही जग की ईर्षा की आँधी लिये हवा जहरीली

साँसों के सुरभित समीर पर हावी झंझावात हो गया
मेरा मन-विहंग पतझर का उड़ता पीला पात हो गया

जब तक रहे उफनती धारा, कब दोनों तट मिल पाते हैं
खो जाती है धार रेत में; तब दोनों तट मिल जाते हैं
हैं दुर्भाग्य-सदानीरा के कूल-किनारों के वासी हैं
दुनियावालों की चिकोटियाँ सहने के चिर अभ्यासी हैं

दुर्लभ मिलन, वियोग-विरह की सौगातें ही मिलीं जगत से
इतना हुआ कि प्यार हमारा अधर-अधर की बात हो गया
जग ने मुँह बिचका-बिचका कर कंकर मार लहर को छेड़ा
किन्तु, हमारे दरियादिल में कंकर घुल जलजात हो गया

२७।९।१९७५

जिस क्षण मन का दरपन टूटा

देने वाले तो मिले बहुत घावों की अनगिन भेंट, मगर—
सिसकी भरते, दुखते दिल को सहलाने वाला नहीं मिला
काटी चिकोटियाँ तो दुनियावालों ने हँस-हँसकर, जी भर
आहत मन को करुणा देकर बहलाने वाला नहीं मिला

लजवन्ती कलियों के घूँघट
रवि-कर ने उलट-पलट डाले
दूबों के हरे-भरे मुखड़े—
चुम्बन से पीत बना डाले

चुपके चोरों-सा दबे पाँव
मलयानिल भी आया हौले
रति-तृषित प्रकृति के केलि—
कक्ष के मुँदे हुए छवि-पट खोले

तानों-तिसनों की झड़ियों से पपनियाँ भिगोयी गयीं, मगर—
रवि को, मलयानिल को दोषी बतलाने वाला नहीं मिला

जग के तीखे उपदेशों के—
दंशों ने हृदय बींध डाला
तम को अपने हिस्से में रख
मुझको दे डाला उजियाला

फिर खुलकर रास रचाने में—
जग को तो बाधा नहीं मिली
पर प्रेम-प्रकाशित गलियों में—
मोहन को राधा नहीं मिली

दिल खोल हँसी दुनिया उस क्षण, जिस क्षण मन का दरपन टूटा
थी भीड़ परायों की, अपना कहलाने वाला नहीं मिला
लेकिन अचरज की बात हुई, कालिख से पुता हृदय जग का
उसको मोहन की गीता के मन का उजियाला नहीं मिला

३०-३१।१।१९७५

पचपनवें जन्म-दिवस पर

है इन्द्र-धनुष दृग के आगे

मेरा कवि-पिक मन-मधुवन में रह-रहकर टेर लगाता है
'चौवन' तक बचपन रहता है, 'पचपन' में यौवन आता है

झुनझुना थमाकर हाथों में
बहला न सकेगी अब दुनिया
'वुड्यों' का भय दिखला-दिखला
दहला न सकेगी अब दुनिया
ऊखल में बँध बँध जाने की बेला बीती, अब तो मेरे-
मन का पंछी उड़ते-उड़ते शत-शत योजन उड़ जाता है

गुड्डे-गुड्डी का खेल न अब—
मेरे मन को भरमायेगा
मिट्टी के बने घरौंदों में—
मन नहीं उलझ अब पायेगा
नाथे हैं नाग कई, कालीदह में कूदा हूँ कई बार
मथ-मथ डालूँ मैं इसीलिये सागर पद-तल दुलराता है

वृन्दावन की छवि-कुंज गली—
कोसों पीछे को छूटी है
अब आकर्षण का केन्द्र नहीं—
रह पायी वीर वहूटी है
सच्चा सुख मिलता है द्रुपदा का चीर अछोर वनाने में
रथ वाह किसी अर्जुन का वनने को युग-धर्म वुलाता है

बचपन की आँख-मिचौंनी में—
हैं धोखे कई बार खाये
यौवन की खुली-धुली आँखों—
नैसर्गिक सपने मँडराये

रेशमी तन्तु के पिंजरे से अब मुक्त विहग मेरे मन का—
चढ़ चन्द्र-किरण के झूले पर राका से रास रचाता है

बचपन का भोलापन भूला
माया-नगरी पीछे छूटी
झूठी विष-भरी हँसी की वे—
छल-छद्मी हथकड़ियाँ टूटीं

घूँघट के भीतर झाँक कलंकित चन्द्र कई देखे मैंने
अब निष्कलंक चन्दा से ही बस कवि-जीवन का नाता है

है इन्द्र-धनुष दृग के आगे
उड़-उड़ मन का पंछी भागे
अगवानी में दिन-रैन विकल
सूरज जागे, चन्दा जागे

सातों स्वर्गों के द्वार खुले, पीयूष-वृष्टि से प्राण धुले
कवि प्राण-वेणु पर मन्द्र-मधुर नित अनहद नाद बजाता है

'धनतेरस'
३१।१०।१९७५

दीपों के झिलमिल प्रकाश में

दीपों के झिलमिल प्रकाश में तुम कितनी सुन्दर लगती हो
तारावलियों के हुलास में तुम कितनी मनहर लगती हो
तुम कितनी सुन्दर लगती हो

दूर गगन के एक किनारे
चाँद किरण की बाँह पसारे
तारों की बोली में अपनी-
यामा को चुपचाप पुकारे

पर तुम तो ऐसी जैसे चाँदनी सिमट कर खड़ी हो गयी
इन अवाक, अपलक, आँखों को तुम कितनी मनहर लगतो हो
तुम कितनो सुन्दर लगती हो

साँसों के पथ पर फूलों की
भीनी गंध बनी फिरती हो
मेरे जीवन के सरवर में—
तुम कलहंसनि बन तिरती हो

ओ मेरे यौवन की पुलकन ! गीतों की सुकुमार प्रेरणे !!
मैं सोता, तुम रात-रात भर मेरे सपनों में जगती हो
झिलमिल रूपों के सुहास में तुम कितनी सुन्दर लगती हो
तुम कितनी मनहर लगती हो

दीपोत्सव
१९५६

सैंतीसवें जन्म दिवस पर

मनसिज का ताल

हँसते-गाते लो बीत गये इस जीवन के सैंतीस साल

उस रोज अचानक वीणा के तारों में थिरक उठा कंपन
कोटर के तिनकों में थिरका असमय कोकिल का कल-कूजन
ताका कलियों ने फूलों ने झिझकी आँखों से बार-बार
ऋतुपति ने मलयज-अंजलि से जी भर बरसाये हरसिंगार

चौंका अम्बर, ठिठके बादल, धरती पर कौंधी रूप-ज्वाल
हँसते-गाते लो बीत गये इस जीवन के सैंतीस साल

झुक गई किरण कवि-चरणों में घुटनों के बल जब 'चाँद' चला
वन्दन में हाथ जुड़े रवि के, स्वागत में शशि का दीप जला
मेरे किशोर कवि पर अल्हड़ मलयानिल विजन डुलाता था
यौवन चुपके से मिलने को तारों की छाँह बुलाता था

आलिंगन को फैलाता था अम्बर अनगिन बाहें विशाल
हँसते-गाते लो बीत गये इस जीवन के सैंतीस साल

हँसते-गाते जब जीवन ने तय कर ली थी आधी मंजिल
यौवन के अल्हड़ झोंकों से मनसिज का ताल बना ऊर्मिल
पल भर को आँखों में चमकी उल्लास-हास की किरण एक
पड़ गया किन्तु क्षण में उस पर झीना, उजला आवरण एक

आँखों की राह उमड़ फूटा अन्तर के आतप का उबाल
हँसते-गाते लो बीत गये इस जीवन के सैंतीस साल

जीवन की भूल-भुलैया में जो कुछ पाया था, सब खोया
चाँदी के चकमक पत्थर पर सिर मारा, पछताया, रोया

रोजी-रोटी के चरणों पर कर दी न्यौछावर किलकारी
दब गई राख की ढेरी में प्रतिभा की नन्हीं चिनगारी
है कसक यही छवि के पथ पर मैं जल न सका बनकर मशाल
रोते-गाते यों बीत गये कवि-जीवन के सैंतीस साल

'धनतेरस'
१९५६

प्राणों का दीप

ज्योति से निज घर-आँगन लीप
जल रहा है प्राणों का दीप
जुही के कुञ्जों में चुपचाप
नयन में स्वर्णिम सपने पाल
विभा रानी की सुरभित साँस
यत्न से उर में सँजो-सँभाल
अश्रु की मोहक मदिरा पिये
किसी के जीवन-कुञ्ज-समीप
जल रहा है प्राणों का दीप

झूमती आती मलय बयार
चूम लौ को दे जाती प्यार
झिमिर-झिम झुक-झुक आते मेघ
सौंप जाते आँसू दो-चार
अँधेरी रात, किसी के लिए
जल रहा तिल-तल तरुण प्रदीप
जल रहा है प्राणों का दीप

आकाशवाणी के पटना—केन्द्र से प्रसारित
२३।५।१९४०

तुम चमकी मेरे जीवन में

तुमने मुझको बाँध लिया है मधुर स्नेह की डोर से
मेरा भावुक मन बाँधा है छवि-अंचल के छोर से
कल-परसों की बात, हृदय ने झाँका छवि को ओट से
दिल ही तो था, घायल हो बैठा चितवन की चोट से
तुम विहँसी, मेरे सपनों पर झरे जुही के फूल री
अनजाने गुँथ गईं टहनियाँ, वायु बही अनुकूल री

भींग गई जीवन की धरती, सुख के उदधि-हिलोर से
गूँज उठा यौवन का मधुवन आनन्दों के रोर से
मेरा जग था सूना-सूना घोर तिमिर ही साथ था
और सहारे के मिस अपने में ही अपना हाथ था
तुम चमकी मेरे जीवन में जैसे बिजुरी बावरी
दृक्पथ से अन्तर पर उतरी बाँकी झाँकी सांवरी

तुमने दिये उछाल अश्रु हँस कर उँगली की पोर से
काली रात बदल दी तुमने अमर सुहासी भोर से
तुमने मुझको बाँध लिया है मधुर स्नेह की डोर से

१९।४ १९४०

शिशिर की चाँदनी

एक कवि को छोड़, बोलो तो भला—
कौन झेलेगा नयन पर यह शिशिर की चाँदनी ?
दूर, पश्चिम में विदा होते दिवा-पति की भुजाओं में सिमटती—
सान्ध्य रानी के कपोलों पर अरुणिमा छा रही थी

(और इधर)

सोलहों श्रृंगार कर छवि-यामिनी गज-गामिनी-सी—
शशि-प्रिया नभ-केलि-कुञ्जों में विहँसती आ रही थी
रात में यमुना किनारे 'ताज' की सौन्दर्य-श्री पर—
टिक गयीं आँखें, ठिठक कर वह ठगी-सी—
देखती ही रह गयी—इंशान के पावन प्रणय की—
अश्रु-सी उज्ज्वल कहानी; रस-पगी-सी
एक उजली बूँद आँसू की अचानक चूपड़ी 'स्मृति-चरण' पर
हो उठी कृत-कृत्य नन्हीं दूब वे छवि-कण वरण कर
जग उन्हें शबनम कहे या ओस कह ले
किन्तु, वे हैं रात के आँसू रुपहले
चिह्न जो समवेदना के, अर्चना के
शीत कह जिनसे सभी बचते रहे हैं
युग युगों से उन अमर मुक्ता-कणों की—
वंदना में छंद हम रचते रहे हैं
कुन्तलों में गूँथ कर हिम-हास की छवि
एक कवि को छोड़ कर किसकी कला
आज छेड़ेगी विमोहन रागिनी ?
एक कवि को छोड़, बोलो तो भला—
कौन झेलेगा नयन पर यह शिशिर की चाँदनी ?

आकाशवाणी, पटना की कवि-गोष्ठी में प्रसारित
१५।१।१९४०

दर्द का यह बोझ

दर्द तो इतना दिया लेकिन, दवा तुम दे न पायी
याचना मेरी तुम्हारा द्वार छू कर लौट आयी
आँसुओं से भर दिया दृग का खुला आकाश तुमने
एक नन्हें नीड़ पर भेजे पवन उनचास तुमने
आह भर कर मर्मरी सौगात पतझर की सहेजी
ले लिया वापस विहँस ओ निर्दयी ! मधुमास तुमने
जुही जैसी गुदगुदी को छीन, पद से रौंद डाला
पीर ऐसी तीव्र दी जो रोम-कूपों में समायी

बिँध गया उपहास-शर से फूल-सा कोमल कलेजा
दर्द का यह बोझ अब मुझसे नहीं जाता सहेजा
आँसुओं का वेग मन के बाँध से रुकता नहीं है
साँस का यह कारवाँ हा ! क्या करूँ, थकता नहीं है
क्या हुआ जो कट गये बंधन तुम्हारे क्रूर हाथों
टीस–पीड़ा–वेदना से हो गयी मेरी सगाई
दर्द तो इतना दिया लेकिन, दवा तुम दे न पायी
याचना मेरी तुम्हारा द्वार छू कर लौट आयी

१।११।१९७३

व्यथा समिधा बनी है

हृदय की बीन के ये तार कुछ यों झनझनाते हैं
कुँआरी नींद को सपने सुहागिन कर न पाते हैं

सिसकते प्रेम के सिर पर बँधा है पीड़ का सेहरा
न आँसू पी सके मन; आँख पर आदर्श का पहरा
किसी की बेवफाई से हुई मन की सगाई है
लिये आँसू हजारों इश्क की बारात आयी है

बजाते श्याम घन शहनाइयाँ दृग-ब्याह-मंडप में
महकती याद के चुम्बन सुमंगल गान गाते हैं

उदासी की हथेली पर रचायी टीस ने मेंहँदी
व्यथा समिधा बनी है, सुलगती है विरह की वेदी
कराहें क्रूर नियमों से बिँधी छवि-छंद की छाती
विभाशित प्राण के मंगल कलश पर दर्द की बाती

स्वयंवर वर्जना के डमरुओं से गूँज जाता है
मिलन दुर्लभ, हुआ क्या शिव-धनुष शत टूट जाते हैं

१४।१२।१९७४

मत निहारो कि दरपन पिघल जायगा

काँच को रूप की आँच लग जायगी
मत निहारो कि दरपन पिघल जायगा
कुन्तलों से न सावन बिखेरा करो
यह बहारों का मौसम बदल जायगा

यूँ ही साँसों से साँसें मिलाती रहो
आँख में आँख डाले पिलाती रहो
पालने पर पलक के झुलाती रहो
हुस्न के इस नशे को जिलाती रहो
वर्ना आ जायगा होश बेहोश को
लड़खड़ाता ये आलम सँभल जायगा

स्याह नागिन-सी चोटी का गल-हार है
रस-कलश युग्म प्राणों का आधार है
आँजना रेख काजल की बेकार है
यह नजर तो यूँ ही तीर-तलवार है
तिरछे-तिरछे न मुड़-मुड़ के ताका करो
मुँह को आया कलेजा फिसल जायगा

हँस के, रह-रह के यूँ लो न अँगड़ाइयाँ
टूट कर ये सितारे बिखर जायँगे
चाँद को बदलियों से न बाहर करो
इन बहारों के तेवर सँवर जायँगे
ये नियम कायदे सब रहेंगे धरे
दिल ही तो है, किसी दिन मचल जायगा

४।६।१९७२

है प्यार यहाँ करना मुश्किल

समझो है पीर बराबर जब हों चारों आँखें भरी-भरी
जग ने फेंकी होंगी तक-तक कंकरियाँ कस कर रुक-रुक कर
फूटी होगी शायद दोनों रस छलकाती मन की गगरी—
है प्यार यहाँ करना मुश्किल
कर लो तो है जीना मुश्किल
हम प्यासे ही रह जाते हैं
पानी रहते पीना मुश्किल

तेवर के तीर बरसते हैं, पग-पग पर व्याधे बसते हैं
मिलने को प्राण तरसते, पर हिरनी-सी आँखें डरी-डरी
कलियाँ खिलने को अकुलातीं
बाँहों में झूल-झूल जातीं
तब तथाकथित नैतिकता की—
त्यौरियाँ हजारों बल खातीं

पर्दे के भीतर रातों को नित रास रचाये जाते हैं
(धर्मों की नीवों पर पापों के महल उठाये जाते हैं)
लेकिन यदि, सच्ची लगन लगी, कुहराम मचा देती नगरी

आकाश-वाणी के पटना-केन्द्र से प्रसारित
९।११।१९७२

ऊपर तो मात्र धुआँ जाता

प्राणों की कोयल तो उड़ कर जा बैठी अनजाने तरु पर
सिसकी भर-भर, छल-छल आँखों हम नंगी डाल निहार रहे

जब तक साँसें थीं, जीवन था
जब तक कोयल थी, मधुवन था
साँसें न रहीं, जीवन न रहा
कोयल न रही, मधुवन न रहा

कूहू के बैन सुना कर ही तो मधुवन देता था परिचय
स्वर की रूठी रानी को अब तरु रो-रो चीख-पुकार रहे

आने में नौ-दस मास लगे
जाना तो हुआ निमिष भर में
खुशियाँ लेकर आये, लौटे—
कुहराम मचा कर घर-घर में

आलिंगन से, भुजपाशों से जाने वाला कब रुका यहाँ
डबडब आँखों, आश्वासन से हम सूनी माँग सँवार रहे

चन्दन-केशर से पुता वदन
जल-जल कर राख हुआ जाता
सब कुछ तो यहीं धरा रहता
ऊपर तो मात्र धुआँ जाता

मिट्टी में मिट्टी मिल जाती, जल जल में घुल-मिल जाता है
जाने वाले के पीछे तो बस दारुण हाहाकार रहे

सोने-चाँदी की रौनक में
यों ही दुनिया भरमायी है
जितनी ज्यादा आँखें गीली
बस, उतनी ही ऊँचाई है

कुछ ऐसा कर तू ही न तरे, संसार तरे, तेरे पीछे—
यश का जय-घोष रहे, जन-जन के कंठों में जयकार रहे

११।१२।११७४

नूपुर-हीन चरण ये छोटे

तुम स्वामी स्वाधीन देश के
मैं नारी आज़ाद वतन की
तुम मधुमास, रास के प्यासे
मैं बहार वीरान चमन की

राम-राज्य के चित्र तुम्हारी—
पलकों पर अब नहीं झूलते
कुरुक्षेत्र की जय-गाथायें—
दिन-दिन तुम जा रहे भूलते

क्रांति सफल हो गयी, राष्ट्र—
को जब नूतन निर्माण चाहिए
नव जागृति, बल, ओज नवल
नव स्वर्णिम सुखद विहान चाहिए

तुम रम गये तभी चाँदी-सोने—
की नश्वर चमक-दमक में
मान मुझे भी बैठे केवल—
रति-सुख-साधन मात्र सनक में

देख तुम्हारी ओर घृणा से
मेरा क्रोध उमड़ आता है
ओ कायर! ऊपर-ऊपर से—
क्रांति-क्रांति क्यों चिल्लाता है

ओ मदहोश! जनक़ पापों के
छल-छद्मों के चिर अभ्यासी
आदि शक्ति को मूर्ख! समझ—
बैठा है तू चरणों की दासी!

देख—अभी भी फड़क रही हैं
मेरे तन की अग्नि-शिरायें
कौंध रहो आँखों में बिजली
फड़क रही हैं दसों भुजायें

जी करता — चूड़ियाँ फोड़ दूँ
वेणी खोल बिखेरूँ अलकें
लगातार ज्वाला बरसायें
मुँदें न एक निमिष को पलकें

मेहँदी के बदले हाथों में—
दुश्मन के लोहू की लाली
केसरिया बाना हो तन पर
भस्मिभूत हो गोटा - जाली

छप-छप-छप असि चले, भूमि—
पर कट-कट शीश शत्रु के लोटें
औ' उनको ठोकर से मारें
नूपुर-हीन चरण ये छोटे

अट्टहास करती बिजली-सी
चमक-दमक मरघट में घूमूँ
देश-द्रोहियों का शोणित पी
काल भैरवी - सी झुक - झूमूँ

उगलूँ आग, गरल बरसाऊँ
दबी सर्पणी—सी फुफकारूँ
समरांगण में डट, गिन-गिन—
कर एक-एक दुश्मन को मारूँ

मैं न पद्मिनी, सजूँ चिता जो
मैं तो बहन रुद्र की छोटी
अपने भैया के चरणों पर
काट चढ़ा दूँ बोटी - बोटी

मैं जिस क्षण हुंकार करूँगी
थर्रायेंगी दसों दिशाएँ
डोलेगा भूगोल, गगन में—
तारे टूट-टूट टकराएँ

तुम हो पिता, देख सकते हो
अपने बच्चों की बर्बादी
तुम हो पुरुष, प्रसन्न बने—
रह सकते हो पाकर आज़ादी

किन्तु, देख सकती है माता—
कभी न लालों को बिललाते
अधनगों-भूखों की टोली—
को रोटी-रोटी चिल्लाते

क्या है जो पय नहीं उरोजों में,—
मैं रक्त पिला पालूँगी
अमृत-कलश पाने को, पल में—
सप्त-सिन्धु मथ-मथ डालूँगी

निद्रा-ग्रस्त विधाता को—
झकझोर जगा दूँगी क्षण-भर में
सुख-श्री का अम्बार लगा—
दूँगी मैं भारत के घर-घर में

घर-घर में ही क्या, पत्ते-पत्ते पर—
घी के दीप जलेंगे
झिलमिल दीपों के प्रकाश में—
युग-युग के सुख-स्वप्न फलेंगे

पुरुष ! तुम्हारे साथ-साथ
देखेगा अचरज भरा जमाना
महाक्रांति के साथ-साथ
आता मा को निर्माण सजाना

'विजयादशमी'
१७।१०।१९५३

जीत यह जग की नहीं है

जीत यह जग की नहीं है
यह नहीं है हार मेरी
प्रेम की विरुदावली तो युग-युगों से गुंजरित है
आत्मा के कल्प-तरु पर प्रेम पुष्पित-पल्लवित है
सोख सकती है नहीं दुनिया हृदय का प्रेम-आसव
सृष्टि आप्लावित करेगी ही सुधा की धार मेरी

कौन अपना है, पराया कौन है, यह कौन जाने
हृदय में जो छवि बसायी, डँस लिया उसने अजाने
मैं किसे गल-हार समझूँ, मान किसको सर्पिणी लूँ
किसे सौंपू क्रोध, लेगा कौन प्रिय मनुहार मेरी

यह दिशा-निर्देश मेरे प्यार की गति ही करेगी
रिक्त उर का पात्र मधु से मधुर स्मृतियाँ भरेंगी
देख असफलता लगाती व्यर्थ ही दुनिया ठहाका
सफलता की सृष्टि होने में लगेगी नहीं देरी
जीत यह जग की नहीं है
यह नहीं है हार मेरी

४।७।१९७३

मन-चन्द्र झकोरे खाता है

चाहिये न तुमको धरा प्रिये ! चाहिये न तुमको नील गगन
कवि के जीवन-तरु से लिपटी तुम अमर-बेल-सी बढ़ा करो
अरुणिम अधरों पर अधरों ने मधुरिम जो गीत लिखे रानी !
तुम झुकी-झुकी पलकों उनके प्राणों की छवि-लिपि पढ़ा करो

दो हृदय परस्पर जुड़ते हैं
सांसों से साँसे मिलती हैं
है आदत बहुत पुरानी, तब–
दुनिया मन ही मन जलती है

जलने वालों को जलने दो, खुद को खुद ही से छलने दो
करुणाभा-किरण मचलने दो, हिम-सा कवि-हृदय पिघलने दो
दो मुक्ति अश्रु-गंगा को, उर-गोमुख से इसे निकलने दो
तप-त्याग-क्षमा से छवि-मंडित इतिहास प्रेम का गढ़ा करो

जग से न हमें कुछ लेना है
केवल देना ही देना है
अनुभाव-भाव रस-ज्वारों में–
कल्पना–तरी को खेना है

नव रस-सागर लहराता है, चिंतन दिल खोल नहाता है
इन ऊँची-नीची लहरों पर मन-चन्द्र झकोरे खाता है
झिलमिल प्रकाश जल-पंखों पर छवि-छाया-चित्र बनाता है
तुम इन चित्रों को चुन-चुन कर मन के दर्पण में मढ़ा करो

१:१।१९६५

तुम्हारे रूप का उन्माद

तुम्हारी याद आती है

शिशिर की चाँदनी जब शबनमी आँचल उड़ाती है
हवा की रेशमी ठिठुरन स्मृति के दंश लाती है
निशा के आँसुओं से तर-बतर सुनसान पगडंडो
मधुर पद-चाप चिर परिचित सुरीली सुन न पाती है
तुम्हारी याद आती है

सँभाले शीश पर घट मोतियों के दूर्वादल है
बड़ा मदमस्त हैं मौसम, चमन बेज़ार, बेकल है
हिना की तुरहियाँ झुक-झूम बे आवाज़ गाती हैं
तुम्हारे रूप का उन्माद छू कर कसमसाती हैं
तुम्हारी याद आती है

महावर से रची उन उँगलियों का स्पर्श मदिरीला
तड़पती तितलियाँ पाती नहीं हैं स्नेह शर्मीला
न सुरभित साँस की झकझोर सौ-सौ स्वर्ग लाती है
खुले उन कुन्तलों की मेघ—छाया मिल न पाती है
तुम्हारी याद आती है

हिरनियाँ खोज कर परिश्रांत बैठीं नयन सुरमीले
कुआँरी कोंपलें ढूँढ़ें अधर के स्पर्श अरुणीले
उरोजों की उठन जब तप्त साँसें छू न पाती है
तिमिर-आच्छन्न उर के कक्ष में चुप लौट जाती है
तुम्हारी याद आती है

१५:१०।१९७१

कौन मेरे अश्रु पोंछे

कौन मेरे अश्रु पोंछे, कौन मुझको उर लगाये
कौन मेरे अश्रु में, हो द्रवित, निज आँसू मिलाये

कौन है जो लड़खड़ाते को तनिक दे-दे सहारा
कौन-सी वह डाल जिसको थाम ले यह थका-हारा
कौन है जो ढ़ाह दे यह वेदना की क्रूर कारा
कौन तिमिराच्छन्न नभ के बीच चमके बन सितारा

भ्रमित पंथी ज्योति में जिसकी सहज निज पंथ पाये
कौन मेरे अश्रु पोंछे, कौन मुझको उर लगाये

आह! चारों ओर विकृत व्यंग ओढ़े हैं मुखौटे
वे चरण पाऊँ कहाँ जिन पर कि मेरे प्राण लोटें
वे खुली बाँहें कहाँ जिनमें कि जीवित शव झुलाऊँ
द्वार सारे बंद किसकी देहरी पर जगमगाऊँ

कौन है वह अंक जिसमें शिशु-सदृश मन शरण पाये
कौन मेरे अश्रु पोंछे, कौन मुझको उर लगाये

१।१।१९७६

चमकी आँखों में हरियाली

लो बीत गया दिन एक और
लो बीत गयी फिर रात एक
बातें तो अभी बहुत लेकिन—
पूरी न हुई पर बात एक

चमकी आँखों में हरियाली
जीवन सपनों पर पला किया,
मन का दीपक तन-दीवट पर—
तिल-तिल कर पल-पल जला किया

हम कोरी बातों में उलझे
बस, खिड़की से झाँकते रहे
देहरी चूम कर लौट गयी
फिर साँसों की बारात एक

रच कर हथेलियों पर हमने
मेंहदी की दो दिन की लाली
फूले मन ही मन समझ कि
बस, ऊषा पा ली, संध्या पा ली

पर जब तूफ़ान उठा, घिर—
गयीं घटाएँ जब काली-काली
बदनाम हुई क़िस्मत पाकर
पछतावे की सौगात एक

२५।७।१९७५

प्राणों का रस बरसाता चल

है अंतहीन, सँकरी-टेढ़ी यह कठिन प्यार की पगडंडी
पावों को लहूलुहान किये चलता चल, हँसता-गाता चल
रे गाता चल, मुस्काता चल

आँसू से पीड़ा के प्रदीप की जीवन-बाती जली सदा
ओ मेरे जीवन के दिवले! आँसू से जीवन पाता चल
रे गाता चल, मुस्काता चल

मीठी टीसें, वेदना मधुर
उपहार प्यार को मिलते हैं
ठोकर पर ठोकर लगती है
हम गिरते और सँभलते हैं

चोटों से पायी पीर तनिक रो देने से हल्की होती
बिँध-बिँध कर घायल हुए हृदय! छल-छल आँसू छलकाता चल
रे गाता चल, मुस्काता चल

कोई न यहाँ साथी-संगी
यह दुनिया निर्मम, बहुरंगी
दिन-रात लटकती रहती हैं
गर्दन पर तलवारें नंगी

कुछ खुले-खुले, कुछ छिपे-छिपे होते ही रहते वार यहाँ
मस्ती से जख्मी सीने पर ये ज़ालिम चोटें खाता चल
रे गाता चल, मुस्काता चल

है प्यार राग दीपक हो तो
रे हँसते - हँसते गाना है
खुद ही तिल-तिल कर जल-जलकर
जग को प्रकाश दे जाना है

ईर्षा के झोंकों से निर्वापित हो पाये कब प्रेम - दीप
आँसू का स्नेह उँडेल, बुझे घर-घर के दीप जलाता चल
रे गाता चल, मुस्काता चल
आलोक अमंद बिछाता चल

पीड़ा को पावन गंगा से
जब करुणा की यमुना न मिले
अंतः सलिला तब सरस्वती का
दर्द भला कैसे पिघले

काँटों को खुल कर चुभने दे, अरुणाभा लिये निखरने दे
बूँदों में स्नेह बिखरने दे, प्राणों का रस बरसाता चल
रे गाता चल, मुस्काता चल

२४।११।१९७४

चौंवनवे जन्म-दिवस पर

आगत भोर के प्रति

झिलमिल तारों के निकुंज में बीती अंतिम रात साल की
आने वाले भोर! न जाने कैसी होगी रात तुम्हारी

बीते दिन तो बड़े सरस थे
बीते दिन तो बड़े मधुर थे
घायल मन की छवियों के पग—
बजते दर्दों के नूपुर थे

आँसू की बारात लिये आया था दुख पीड़ा को बरने
क्वांरी टीस, न जाने अब कैसी होगी बारात तुम्हारी
झिलमिल तारों के निकुंज में.........

ठेस लगी, बचपन मुस्काया
चोट लगी, यौवन गदराया
लगीं ठोकरें, करुणा बिखरी
सिहर - सिहर कर निखरी काया

छल आँसू बन - बन कर छलका, ज्यों छींटा हो गंगा जल का
मरु को भी नंदन कर आयी सींच - सींच नयनों की झारी
झिलमिल तारों के निकुंज में... ....

दिल तो इतना बड़ा मिला
पर दर्द मिला ऐसा-वैसा ही
देने वालों ने समझा मेरा—
दिल भी अपने जैसा ही

मैं तो अब भी बाँह पसारे, भटक रहा हूँ द्वारे-द्वारे
पता नहीं क्या ऐसो-वैसी ही होगी सौगात तुम्हारी
झिलमिल तारों के निकुंज में... ....

सचमुच पीर बहुत प्यारी है
आँसू अतिशय सुख देते हैं
कसक, वेदना, मधुर टीस के—
चप्पू ही नैया खेते हैं

यदि ये होते नहीं, नाव को कब की मझधारें पी जातीं
चरण चूम कर नहीं पुलिन तब भर पाता शिशु-सा किलकारी
झिलमिल तारों के निकुंज में.........

जग की सारी पीड़ा का
उपहार लिये आओ तो जानूँ
दर्दों की प्यारी सौगात—
लिये आओ तो अपना मानूँ

जी करता है सारी पीर समेटूँ, मन-प्राणों में भर लूँ
युग-युग तक मैं हरी-भरी रक्खूं अपने मन की फुलवारी
झिलमिल तारों के निकुंज में.........

चाह नहीं—हो सुरपुर जाना
मुक्ति-मोक्ष जैसा कुछ पाना
लगा रहे बस आना-जाना
ऊदे घावों का सहलाना

चोटें खा कर निखरूँ-सँवरूँ, प्रभु-पद-रज बन भू पर बिखरूँ
मरु-सा हँस-हँस कर झेलूँ मैं दर्दों की बरसात तुम्हारी
झिलमिल तारों के निकुंज में..........

'धनतेरस'
१०-११।११।१९७४

नुचे पंख-पंख

चलो एक गीत और आज हुआ पूरा
पिछले जीवन में जो रहा था अधूरा
चलो एक गीत और आज हुआ पूरा

इधर - उधर नहीं थमी
शशि-मुख पर दृष्टि जमी
जाँच लिया, परख लिया
रंच मिली नहीं कमी

सोने-सी काया पर झरा रजत चूरा
चलो एक गीत और आज हुआ पूरा

न्यौछावर किये प्राण
हँस कर उर किया दान
अधरों से झरे गान
साँझ बनी नव विहान

किन्तु, बनी चन्द्र-मुखी हृदय-हीन, क्रूरा
चलो एक गीत और आज हुआ पूरा

नकली थी चन्द्र-किरण
नग्न - काय, निरावरण
पंछी ने गही भूल—
बाजों के गेह शरण

नुचे पंख - पंख, अस्थि-मांस गया थूरा
चलो एक गीत और आज हुआ पूरा
पिछले जीवन में जो रहा था अधूरा

४।७।१९७३

नयनों में आँजो न अमा को

बीती बातों का क्या रोना
जीवन भर बीती बातों के शव को क्या कंधों पर ढोना
बीती बातों का क्या रोना

तुमने ठीक किया, पर जग ने समझा तुमने ग़लत किया है
तुमने चखी सुधा, लेकिन, दुनिया चिल्लायी - ज़हर पिया है
दुनिया में रहना है तो दुनिया वालों की बात सही है
दुनिया से बाहर रहने पर समझौते का प्रश्न नहीं है

दुनिया में रहना है तो तुमको समझौता करना होगा
इंगित पर संसृति के तुमको जीना होगा, मरना होगा
चतुराई की बात न होगी जग में रह कर जग को खोना
बीतो बातों का क्या रोना

गुजरे कल को भूलो-बिसरो, बीत गयी जो बीत गयी रे
आखिर तो तुम रो-रो हारे, हँस कर दुनिया जीत गयी रे
जिसको तुमने अपना माना, था साँसों का सरगम जाना
यह तो भूल तुम्हारी ही थी, क्यों न उसे तुमने पहचाना

बीत गयी जो बात गयी रे ! काजल - काली रात गयी रे
रिक्त हथेली पर लो धर दी प्राची ने सौगात नयी रे
अरुणोदय के उर में झाँको, नयनों में आँजो न अमा को
जग के चरणों पर कंदुक-सा तुम तो हो बस एक खिलौना
बीती बातों का क्या रोना

जीवन भर बीती बातों के शव को क्या कंधों पर ढोना
बीती बातों का क्या रोना

१७।७।१९७३

कल्पना के घुँघरू

मिट्टी की सोंधी गंध बसी है प्राणों में
तारों के गंध-हीन कुंजों में क्यों जाऊँ
उस कल्पित नंदन का आनंद तुम्हीं लूटो
मैं तो अपनी मिट्टी से सौ-सौ सुख पाऊँ

मेरी मिट्टी से लिपट बनी गंगा पावन
मेरी मिट्टी खा कर मोहन मुस्काये थे
इस मिट्टी को ही चढ़ा शीश पर पुरुषोत्तम
अपनी खोयी मर्यादा वापस लाये थे

मेरे जीवन की सुरभि, प्राण की पुलकन है
मैं क्यों न भला इस मिट्टी पर बलि-बलि जाऊँ

रवि से प्रकाश की जिसने सदा याचना की
वह एक अकेला चाँद चमकता अम्बर में
पर मेरी मिट्टी का कण-कण चाँदनी सना
मेरी धरती के चाँद विहँसते घर-घर में

नौ लाख सितारों पर इतरा कर क्या होगा
इन कोटि नयन के तारों पर मैं इतराऊँ

जिस मिट्टी पर करुणा बिखेर कविता फूटी
छंदों की छवि से शब्द-ब्रह्म ने व्याह रचा
मन के आँगन में बजे कल्पना के घुंघरू
वेदों की गूँजी दिगदिगन्त में अमर ऋचा

साँसों का सरगम बजा प्राण की वीणा पर
मैं क्यों न झूम उस चन्दन का वन्दन गाऊँ

जिसने सोने जैसी काया को दुलराया
प्राणों का रस तुतले बोलों पर बरसाया
सुख-दुख के झूलों पर जिसने लोरियाँ सुना
मन के नयनों को सौंपी 'सत्यम्' की माया

यह मुक्ति-मोक्ष की तृषा मुबारक हो तुमको
मैं तो इससे उपजूँ, इसमें ही मिल जाऊँ

५।६।२।१९७४

तुमसे

तुमने मुझको डँसा अचानक नागिन ! इतने ज़ोर से
बरस पड़ीं सावन की आँखें, धरा नहायी लोर से

भोले मन को लगा कि तुम गठ-बंधन वाली डोर हो
दुख की काली रातों का तुम अमर सुहाँसी भोर हो

इतनी चमक कहाँ से पायी
इतनी ज्योति कहाँ से लायी

मुझको लगा कि तुम जीवन - सागर में उठी हिलोर हो

तुमको देख दर्द पिघला था
आँसू का निर्झर उछला था

मुझको थी उम्मीद कि तुम मेरा दुख बाँहों में भर लोगी
मेरे अश्रु पोंछ दोगी, तुम हँस, उँगली की पोर से
लेकिन तुमने डँसा अचानक नागिन ! इतने ज़ोर से
बरस पड़ीं सावन की आँखें, धरा नहायी लोर से

अल्हड़ मन को लगा कि तुम सुरभित सुमनों का हार हो
मेरे मदमाते यौवन का तुम अनंग-शृंगार हो

इतनी सुरभि कहाँ से पायी
यह सौन्दर्य कहाँ से लायी

मुझको लगा कि तुम नख से शिख तक बस केवल प्यार हो

तुमको देख प्राण हुलसे थे
अधरों पर मधु - छंद हँसे थे

मुझको था विश्वास, कि पथ की इति तक पैंजनियाँ झनकेंगी
बँधी रहेगी प्राणों की पतंग जीवन की डोर से
लेकिन तुमने डँसा अचानक नागिन ! इतने ज़ोर से
बरस पड़ीं सावन की आँखें, धरा नहायी लोर से

तुम तो निकली नागिन काली
ज़हर भरी सोने की प्याली
बूँद - बूँद में सम्मोहन था
चमक-दमक थी, आकर्षण था
बन कर डोर अंग से लिपटी
बन गलहार वक्ष से चिपटी
तन - मन में तूफ़ान भर दिये
अधरों पर विष-दंत धर दिये
साँसों में भर दिया हलाहल
सोख लिया विश्वासों का बल

पंख-पंख नुच गये, प्रेम-खग शोणित से लथ-पथ कर डाला
पात-पात झर गये प्रीति-तरु के झंझा-झकझोर से
तुमने मुझको डँसा अचानक नागिन! इतने ज़ोर से
बरस पड़ीं सावन की आँखें, धरा नहायी लोर से

*लोर—भोजपुरी भाषा का एक शब्द। अर्थ—आँसू

*आकाशवाणी के पटना—केन्द्र से प्रसारित
१८।३।१९७६

डर लगता है

प्रिय-विहीन, सुनसान, असुन्दर यह अपना ही घर लगता है
गली - मुहल्ले सूने - सूने औ' वीरान शहर लगता है

रुन - झुन की धुन सुन न पा रहा
आँगन लगता रोया - रोया
दीवारें उदास लगती हैं
केलि - कक्ष भी खोया - खोया

नहीं सुहाता है जीवन की छवि-वीणा का डुंग - डुंग बजना
फूलों की पंखुरियों का स्वर पतझर की मर्मर लगता है

छाया-सी जो साथ लगी थी
नख-शिख प्रिय के प्रेम पगी थी
इतने बड़े विश्व में केवल
जो अपनी थी और सगी थी

उसके क्षणिक विरह ने पीड़ा को शाश्वत यौवन दे डाला
रवि-आतप की बात न पूछो, चन्द्र-प्रकाश प्रखर लगता है

सुख-दुख के हिचकोले खाते
बीती इतनी बड़ी उमरिया
तार - तार कर दी दुनिया ने
मेरे मन की लाल चुनरिया

अपनी हो साँसों की धुन सुन-सुन मैं चौंक-चौंक उठता हूँ
दुर्दिन में अपनी ही छाया से अपने को डर लगता है

आकाश-वाणी के पटना—केन्द्र से प्रसारित
२।८।१९७५

मधुशाला में लोहू पीना है मना

कीचड़ पर कीचड़ उछालना व्यर्थ है
मिट्टी पर मिट्टी क्या रखती अर्थ है

भूल, भूल रे भूतकाल को भूल जा
ज्योति-ताल की इन लहरों पर झूल जा
वर्तमान के चप्पू की गह बाँह रे
कह दे तिमिर-पाल को—उड़ जा, फूल जा
फेंक अश्रु के तुहिनों वाले जाल को
बुझा-बुझा इन प्रतिशोधों की ज्वाल को

रूप-लपट से रोम-रोम झुलसा, मगर,—
शेष प्राण का नीड़ जलाना व्यर्थ है
कीचड़ पर कीचड़ उछालना व्यर्थ है

आँसू में इस व्यथा-सुधा को ढ़ाल दे
शब्दों में भर करुण-कथा को, ताल दे
मधुशाला में लोहू पीना है मना
आहें भर, रो-रोकर जीना है मना
सारी पीर उँडेल सुरीले गान में
यह काँटा तो चुभा हुआ है प्राण में

ला पंखुरियाँ किसी अछूते फूल की
काँटे से काँटा निकालना व्यर्थ है
कीचड़ पर कीचड़ उछालना व्यर्थ है

१।१२।१९७४

कीर्तिशेष अभिन्न कवि-बंधु 'नेपाली' की मृत्यु-तिथि पर

"स्वाधीन कलम"

चलते-चलते रुक गयी आह! मेरे कवि की 'स्वाधीन कलम'
लाखों का दिल ले गयी चुरा तितली-सी चपल हसीन कलम

बचपन ठुमका 'पीपल'—नीचे
किलकारी 'हरी घास' सींचे
हिम - शिखरों पर मन छितराया
झरने उछले पीछे-पीछे

घन - कुन्तल की छवि-छाँह-तले
'देहरादून के मधुर बेर'
बाँटे जिसने अंजलि भर-भर
कचनार प्यार के ढ़ेर-ढ़ेर
चंचल जल में छवि-चरण डाल, रस-वर्षण में लवलीन कलम

तितलियाँ, झील, झरने, झुरमुट,
पंछी को प्यार किया जिसने
जग को तो बाँटी प्रीत किन्तु,
हँस-हँस कर ज़हर पिया जिसने

जिसने दुनिया को मस्ती दी
गीतों में भर अलमस्ती दी
नयनों के सूने अम्बर को—
झिलमिल तारों की बस्ती दी
छवि की पैंजनियों की रुन-झुन में रसी-बसी तल्लीन कलम
हँस-हँस सर्वस्व लुटा कर भी जो बनी नहीं रे दीन कलम

हम लाख लुटायें शव्द-सुमन
गंगा-यमुना की धार बहे
अब लाख कीर्ति के बोल करुण—
मंचों पर जायें सुने-कहे
करुणा न हमारी निरावरण
आँसू मोती बन सके नहीं
चल दिये चुरा कर गीत, मगर,
आहें सुन कर हम रुके नहीं
इसलिये खरीदी नहीं गयी आँसूवाली नमकीन कलम
बिखरे-टूटे तारों वाली कोकिल-कंठी कवि-बीन कलम

१७ अप्रैल, १९६५

आत्मा का व्योम

देख लें सारे सुधी जन
खुली पुस्तक-सा विमल-मन

डाह, ईर्षा, द्वेष के शत-शत खड़े कर शैल काले
लाख नर्तित कवि-चरण में कुटिल जग जंजीर डाले
धूलि-कण बन लिपट जायेंगे चरण से अन्ततः सब
रुकेगा रोके नहीं यह तीव्र प्रतिभा का प्रभंजन
देख लें सारे सुधी जन
खुली पुस्तक-सा विमल-मन

युग-युगों कीं साधना पूरी हुई, जो थी अधूरी
रक्त-रंजित पद हुए तब निकटता में ढ़ली दूरी
व्यंग-वाणों से हृदय छलनी बना, दुख-भार झेले
युग-युगों तक बिँधे मन के करुण हाहाकार झेले
ठेस लग-लग कर हृदय का चूर होता रहा दर्पण
तब कहीं पाये नयन ने पारदर्शी अश्रु के कण

मुक्त-पलकों नील नयनी झील जीवन भर उलीचो
नयन-झारी से भुवन की चिर तृषित मरु-भूमि सींची
मोतियों की झालरों के द्वार वंदनवार बाँधे
मृत्यु का शव रहा ढ़ोता मैं विकल मन युग्म काँधे
लगी न जाये आग पानी में, कला को काल लीले
इसलिये जलता रहा खुद, नयन में पाले सघन घन

चाहता हूँ—विश्व मेरे दर्द को अपना समझ ले
जलन जी की झेल, क्या होता तनिक तपना समझ ले
यदि यही अपराध मेरा, मैं इसे हरदम करूँगा
तेवरों से डाहियों के यदि तनिक-सा भी डरूँगा

कफ़न लेगी डाल तन पर कला कलुषित कालिमा का
आत्मा का व्योम तम बन जायगा काली अमा का
कौन बालेगा नयन के दीप अन्तर–भारती के
कौन लायेगा सुधा कर - क्षीर काव्योदधि-विलोडन

डाह, ईर्षा, द्वेष के शत नाग डँस कर क्या करेंगे?
अमृत जिसके कंठ उसको डँस मरण ही तो वरेंगे
स्नेह-वर्षण से नमित होंगे तने—फुँफकारते फन
अश्रु पश्चाताप के मेरी खुली अंजलि भरेंगे
सत्य - शिव - सौन्दर्य - युत जब स्वस्थ स्पर्धा जगेगी
सार्थक होंगे उसी क्षण मलयवाही बीन के स्वन
देख लें सारे सुधी जन
खुलो पुस्तक-सा विमल-मन

'दीपोत्सव'
१९७४

धरी रह जाय यह वीणा अबोली

न भूलो मौत को तुम एक पल भी
पलट कर साँस फिर आये न आये
धरी रह जाय यह वीणा अबोली
सुरों को नींद गहरी धर दबाये

चिता शव को जला कर राख कर दे
न कोई कोष मोती का लुटाये
वहीं सब कुछ, यहाँ पर कुछ नहीं है
हजारों बार हम यह देख आये

विरह की आग में फूँको नशेमन
खुदा खुद दौड़ सीने से लगाये
जरा खुल कर सुरीली तान छेड़ो
ये श्यामल मेघ फिर छायें न छायें

ज़माने से नहीं हम, हमसे है ज़िन्दा ज़माना
हमारे तेवरों से कायनातें डगमगायें
अगर शायर न हों तो सृष्टि का घूँघट न उलटे
इन काले बादलों से चाँद बाहर आ न पाये

१५।८।१९७४

जान अगर ये बादल पाते

जितना दर्द सँजोये हूँ मैं जान अगर ये बादल पाते
वज्र छिपाये हुए कलेजे तड़क-तड़क कर फट-फट जाते

आँसू के सैलाब उमड़ते
रह-रह कर बिजली बल खाती
उठते जब तूफ़ान, तरकशों—
तीरों की धज्जी उड़ जाती

एक फूँक ही काफी होती, नहीं मुरव्वत-माफी होती
मेरा चमन जलाने वाले दीप भभक कर बुझ-बुझ जाते

इतने आँसू बहे कि जितना—
नीर नहीं सातों सागर में
जितनी पीर सँजोये है जग
उतनी इस मन की गागर में

तानों-तिसनों की कंकरियाँ मार रही दुनिया हरजाई
कहीं गगरिया फूट गयी तो तड़पेंगे मौसम मदमाते

ऊदे-हरे घाव इस मन के
दिये जिन्होंने हँस गिन-गिन के
आहों के आँधी - पानी में
उड़ न जायँ वे बनकर तिनके

इसीलिये मैं आह न भरता, उमड़े आँसू रोका करता
इतने बड़े कलेजे वाले ही तो सच्चे कवि कहलाते

४-६।१९७४

विज्ञान और कवि

विज्ञान ! तुम्हारी ज्वाला में दुनिया के जलने से पहले
कोमलता होगी विदा कहीं, कवि का संसार नहीं होगा
तुम जन्म रौंदते आते हो
तुम मरण लुटाते जाते हो
छवि की इस मोहक नगरी में
तुम हँस-हँस आग लगाते हो

हैं प्राण तुम्हारे बसे हुए
बारूद और चिनगारी में
मैंने तो पहले ही सोचा—
था यह कि तुम्हारी बारी में—
तरकश में तीर नहीं होंगे, कर में तलवार नहीं होगी
होगा 'एटम' का छल केवल, बल का हुँकार नहीं होगा
आँखों के आगे आती है
हर रोज मरण-तस्वीर नयी
हर रोज फेंकते हो जग पर
ज्वालाओं की जंजीर नयी

तुम जला रहे फूलों-सा तन
तुम जला रहे तितली-सा मन
होंगे प्रस्फुटित प्रदाहों में—
जब चिंतन के अंगार-सुमन
होगा वह रक्त-पर्व का दिन, मंगल त्यौहार नहीं होगा
आँखों में अश्रु नहीं होंगे, अन्तर में प्यार नहीं होगा
मरघट बन रही आज दुनिया
सुख-सौन्दर्यों की चिता जली
जल रहे कुंज, जल रहे पात
जल रहे फूल, जल रही कली

जल रहा युद्ध की ज्वाला में
इस सृष्टि-सुन्दरी का सुहाग
बह रही विनाशों की आँधी
जल रहा क्रूरता का चिराग

मालूम बहुत पहले से था—अंगारों की इस दुनिया में—
होगा न उमंगों का कलरव, छवि का जयकार नहीं होगा

विज्ञान ! तुम्हारी ज्वाला में
यदि यह संसार जलेगा ही
तो याद रखो-यह सर्वनाश—
तुमको भी कभी छलेगा ही

तुम स्वयम् मिटोगे मुट्ठी में—
नर की संस्कृति का भस्म लिये
धरती से होगी विदा गिरा—
अपनी वीणा अंकस्थ किये

भावों के मेघ नहीं होंगे, करुणा का ज्वार नहीं होगा
कवि होगा कहीं विलीन, सभ्यता का आधार नहीं होगा

२५।११।१९४८

छठ पर्व की संध्या

झाँक रहे हैं खेत अचंभित हँसते वन की ओर
उजड़ी दुनिया अपनी, बसते हुए चमन की ओर

पंछी लौटे वन को, भर कर चंचु-चंचु तिनके
नीड़-नीड़ में प्राण-बीन के तार-तार झनके
मुग्ध दिवा-पति के छवि-चरणों से हिलते जल में—
खड़ी नारियाँ मौन फूल-फल भर कर अंचल में
कोमल कमल-सम्पुटों-सी कुछ बाँधे अंजलियाँ
तपसिनियों-सी रवि-पूजन-अर्चन में रत कलियाँ

निरख रही हैं अपलक छवियाँ 'ज्योति-सुमन' की ओर,
विदा माँगते हुए, विहँसते रवि-आनन की ओर

झूल रही झुक लहर-हिंडोले दीपों की माला
पेंग-पेंग पर थिरक रहा मणि-चित्रित उजियाला
दूर-दूर पर मचल रही तारों की छवि-छाया
तोड़ किसी अल्हड़ ने मानो गजरा छितराया
यह उमंग की साँझ कि मोहित कवि के प्राण खिले
कवि-वन्दन में दीपों के झिलमिल छवि-शीश हिले

कटि-किंकिनियाँ झनका जाती आ-आ कर इस ओर
अल्हड़ वारि-राशि की अँगड़ाई की मधुर हिलोर

छठ पर्व की संध्या
१९४५

बसन्त-सप्तक

सा

प्रकृति पुरुष में, कली फूल में बदल रही है
मधुर अमिय गुदगुदी रम रही अंग-अंग में
जीवन खुल कर खेल रहा, यौवन उमंग में
कोकिल की काकलियों से सुधि बहल रही है
प्रकृति पुरुष में, कली फूल में बदल रही है
मिट्टी की सोंधी सुगन्ध छा रही गगन में
छवि की पायल झनकाती मधुऋतु कानन में
शबनम की बूँदें पत्तों से फिसल रही हैं
प्रकृति पुरुष में, कली फूल में बदल रही है

रे

पीले पात झरे
लगे झूमने वृन्त-वृन्त पर पल्लव हरे-हरे
पीले पात झरे
धानी चुनरी ओढ़ धरा दुलहिन-सी बनी-ठनी
पुरुष-प्रकृति के मधुर मिलन का माध्यम सहज बनी
दूबों की फुनगी पर पतझर के आँसू बिखरे
पीले पात झरे
वन-श्री विहँस रही, मधु-ऋतु का गदराया यौवन
एक अनोखी मादकता में डूब रहा त्रिभुवन
मस्ती की मदिरा से घुल प्राणों के पर निखरे
सतरंगी सपनों के नभ में विहँस उड़ान भरे
पीले पात झरे

ग

हर्सिंगार फूले
झूल रही छवि-श्री रति-पति की बाँहों के झूले
हर्सिंगार फूले

पढ़ता मनसिज रति - रानी की चितवन की भाषा
बौराया गुलाब, अलि चम्पा - चुम्बन का प्यासा

गूँज रही कूहू, रसाल में मदिर बौर फूले
पहन वसन वासन्ती कविता ठुमुक-ठुमुक डोले
हर्सिंगार फूले

किरणों को आलिंगन सौंपे सरसिज मतवाला
कलियों के अधरों को चूमे कपटी अलि काला

पंछी चहक रहे तरु - फुनगी पर भूले - भूले
चाह रही धरती—अम्बर के अधरों को छूले
हर्सिंगार फूले

म

प्रकृति का यौवन गदराया
विरहिन की आँखों का काजल गालों पर छाया
प्रकृति का यौवन गदराया

टीसें छूम छन्न् उर - सर की लहरों पर नाचें
रात - रात भर नयन सितारों की छवि-लिपि बाँचें

तपन सौंपती हर्सिंगार के विरुए की छाया
रोम - रोम वेधती विलासी मनसिज की माया

प्रकृति का यौवन गदराया
वुझा - वुझा जीवन, यौवन अलसाया-सा आली
बेदरदी प्रिय ने मेरी सुधि मसल-मसल डाली

यह ऋतुराज निगोड़ा ऐसी अकथ पीर लाया
मलयानिल के मिस अन्तर पर वाडव छितराया
प्रकृति का यौवन गदराया

प

ऋतुपति रूप का अम्बार
विपुल पुलकन, मृदुल कंपन, गुदगुदी की मार
रेशमी स्मिति, रुई के पहल-सा सुकुमार
ऋतुपति रूप का अम्बार

हरे – पीले – लाल – चितकबरे – सुनहरे कीर
केलि - रत रोमांच - अंबुधि के सुहाने तीर

तितलियों के इन्द्रधनुषी पंख पर छवि-भार
गुंजरित मन-मुग्ध अलियों की हसीन कतार
ऋतुपति रूप का अम्बार

बोरती रस-सिन्धु में मन - प्राण कोयल कूक
विकल विरहिन के हृदय को कर रही दो टूक

झूमती शेफालिका, हँसता मुदित कचनार
सौंपता रति - पति उरोजों को प्रसन्न उभार
ऋतुपति रूप का अम्बार

ध

रस की रेशमी बरसात
यह सुधा रस - स्नात वासर, यह पियूषी रात
रस की रेशमी बरसात

गुदगुदा जाता उनींदे मुकुल को उच्छ्वास
खिलखिला कर झूम उठता बावला मधुमास

लदी फूलों से टहनियों-सी सुकोमल बाँह
फैल जातीं अंक में भरने सुमुखि अज्ञात
रस की रेशमी बरसात

हरी दूबों की फुनगियों पर बिछा छवि-ज्वार
टूट कर बिखरा धरा पर ज्योति का गलहार

झूलती काजल सजे दृग में सजीली रात
फूटता अरुणिम नयन की ज्योत्सना में प्रात
रस की रेशमी बरसात

नौ

चहुँदिशि गूँजते छवि - छंद
मुक्त भावों के भ्रमर उर - सम्पुटों में बंद
चहुँदिशि गूँजते छवि - छंद

रास - कुंजों से निःसृत नव रागिनी अनमोल
कल्पना के वृन्त पर नव स्वप्न के हिंडोल
झूलते रस - स्निग्ध प्राणों के विहग सुकुमार
बज रहे धीमे सुरों में ज्योत्सना के तार—
पहन वासन्ती वसन झूमें विटप स्वच्छन्द
चहुँदिशि गूँजते छवि - छंद

गुदगुदा जाता अनिल के मिस छली ऋतुराज
खोलते घूँघट कली को आ रही है लाज
रम रही मन - प्राण में मृदु पिकी की आवाज़
बज रही है केलि - कुंजों में मुरलिका आज
छा रही दिशि - दिशि पुलक की मूर्छना, आनन्द
हो रही मन्दाकिनी रस की प्रवाहित मंद
चहुँदिशि गूँजते छवि - छंद

३ मार्च; १९५८

पोर-पोर दुखती थकान से

टूट रहा है अंग - अंग रे पोर - पोर दुखती थकान से

पथ का कोई छोर न दीखे
नभ - नयनों की कोर न दीखे
निशि द्रुपदा के चीर - हरण-सी
अमर सुहासी भोर न दीखे

मन ऊबा इस सन्नाटे से, साँय - साँय सुनसान से
पोर - पोर दुखती थकान से

नील नयन की झील तरसती
यह घन - छाया तनिक बरसती
लगता कितना सुखद - सुहावन
लहरों पर बूँदों का नर्तन

ढँक जाती दर्दों की घाटी मोती - झालर के वितान से
पोर - पोर दुखती थकान से

आँसू दुख हल्का करते हैं
इसीलिये छलका करते हैं
भग्न हुई जीवन - वीणा के
तारों में सरगम भरते हैं

भर देते आँचल पीड़ा का मृदु सुधियों के सुखद गान से
पोर - पोर दुखती थकान से

८.९.१९७३

बीमार कलम

कौन है जो रक्त की दो बूँद तृषिता को पिला दे
आजकल मेरी कलम सचमुच बहुत बीमार है रे
आँसुओं की निर्झरी ने रोग दूना कर दिया है
मौत दरवाजे खड़ी है, जानता संसार है रे

फूल जूही के लपेटे थी सुशोभित जो कलाई
सख्त लोहे की उन्हीं में आज क्यों जंजीर आई
लाल आँखें कर इसे क्यों दे रही निर्देश दुनिया
मुक्ति की इन बंधनों से हो गयी कैसी सगाई
अंकुशों से बिंध गयी है फूल-सी सुकुमार काया
वज्र यह कैसा नियति के क्रूर हाथों ने गिराया

जो रही उन्मुक्त, थिरकी जो कमल की पंखुरी पर
आज उसके पद तले क्यों दहकता अंगार है रे

क्यों तराशी है गयी यह जीभ रे कोई बता दे
कौन पर्दे में छिपा है, हुक्म यह किसका, पता दे
जानता है वह कि इसकी नोंक में है धार इतनी
विश्व की बारूद में है शक्ति जितनी, मार जितनी
बस, इसे दो बूँद अपने हृदय के रस की पिला दे
मर रही है शक्ति मानव की इसे कोई जिला दे

बात क्या इस पार की, चुटकी बजाते छीन लेगी—
सप्त स्वर्गों का सुखद संसार जो उस पार है रे

शब्द है यदि ब्रह्म तो फिर ब्रह्म बँध कैसे सकेगा
ज्योति का यह कारवाँ कैसे प्रगति-पथ पर रुकेगा
लाख बाँधो बंधनों से, लाख तुम जंजीर डालो
लाख तोपों से सजो तुम ऐटमी फौजें उछालो

लेखनी की नोंक से तलवार मुड़ कर टूटती है
शब्द के ज्वालामुखी से क्रांति-धारा फूटती है

ठोकरों में ठीकरों-सा ताज इसके लोटते हैं
वज्र से भी सौगुना इसका प्रदीप्त प्रहार है रे

और जो कुछ भी करो तुम, स्वर्ग धरती पर उतारो
साथ देगी यह तुम्हारा, विश्व की क़िस्मत सँवारो
पापियों के शीश काटेगी स्वयम् यह नोंक से रे
किन्तु, ओ नादान! इसको तुम न यों बेमौत मारो
शक्ति खो देगी कलम जिस क्षण, मनुजता रो उठेगी
हो प्रणत इसके चरण पर शक्ति का आधार है रे
सृष्टि के सौन्दर्य का, देवत्व का, अमरत्व का यह—
लेखनी ही मात्र सुन्दर - सत्य - शिव - शृंगार है रे

२९.७.१९७९.

पीड़ा-पुत्रों का तर्पण-जल

उन हथेलियों की मेंहदी तो कब की उतर चुकी होगी री !
मेरे मन में रची महावर को उतार दो तो मैं जानूँ

मन - उपवन के कुंज - कुंज में
सुधियों की तितलियाँ - बसाये
टहनी - टहनी झूम - झूम कर
प्रीत - प्यार के बैन सुनाये

मैं मस्ती में बजा रहा हूँ जीवन - बीन अटपटे स्वर में
मेरे इन अटपटे सुरों को तुम सँवार दो तो मैं जानूँ

तुमने अपने जाने खींची
चिर वियोग की लक्ष्मण - रेखा
चल दी तुम अनजान डगर पर
परिचित पंथ न मुड़ कर देखा

तुमने सोचा – प्रेमी मन का पंछी उड़ - उड़ कर हारेगा
बने पैंजनी - धुन बेसुध मन को पुकार लो तो मैं जानूँ

तुमने सोचा—प्रेम खेल है
प्यार - प्रीत हैं आँख - मिचौनी
तुमने समझा तन - गुंफन को
क्षण भर कर सुख मात्र सलोनी

पर वह तो मन से मन के गुँथ जाने की शाश्वत थिरकन है
एक हुए दो मन की छवि-परतें उघार दो तो मैं जानूँ

जिसका हृदय बड़ा होता है
वही झेल पाता मजबूरी
चरणों पर लोटती उसी के
नक्षत्रों में खोयी दूरी

चिरयौवन का इन्द्रधनुष जीवन के ओर-छोर छू जाये
नीची नजरों भी पल भर को तुम निहार लो तो मैं जानूँ

आँखों की उमड़ी यमुना पर
पलकों के कदंब की छइयाँ
सुधियों के विष-व्याल पड़े हैं
डाल कपोलों पर गलबहियाँ

विस्मृति का मरु पी न सकेगा पीड़ा-पुत्रों का तर्पण-जल
अन्तरतम में छिपी पीर के पद पखार लो तो मैं जानूँ

इस झूठे-से गठ-बंधन से
चिर परिचय की ग्रंथि बड़ी है
ठोकर की लालसा लिये यह
शीशे की दीवार खड़ी है

कह दो तो मैं ठोकर मारूँ, मझधारों से तुम्हें उबारूँ
बिना सहारे डगमग नैया को उबार लो तो मैं जानूँ

२१।१।१९७६

रो दे तो सावन इठलाये

गा दे तो बिछ जाँय बहारें
रो दे तो सावन इठलाये
क्या कह दूँ अपनी वाणी से
बोलो यह रोये या गाये

रोना - गाना चीज़ बड़ी है
दोनों पर ज़िन्दगी खड़ी है
गाओ बरसें फूल, सिसकने—
पर मोती की लगी झड़ी है

दरस - परस फूलों का सुन्दर
मोती का झर जाना सुखकर
शोभे एक गले में तो दूसरा—
गाल पर शोभा पाये

१७.८.१९७६

प्यार क्या इतना असुन्दर !

प्यार क्या इतना असुन्दर !
सह्य क्यों जग को नहीं हैं प्यार के स्वर

सृष्टि में जो भावनाएँ अति सुकोमल
प्यार हीं शृंगार उनका है समुज्ज्वल

ताकता है क्यों घृणा से जग उसे फिर !
प्यार क्या इतना असुन्दर !

दो हृदय मिल एक होना चाहते हैं
साथ हँसना, साथ रोना चाहते हैं

दफ़्न कर देता जगत क्यों उन्हें हँस कर !
प्यार क्या इतना असुन्दर !

आयु का व्यवधान है तन की समस्या
प्रीत तो केवल सहज मन की समस्या

प्यार से क्या वासना की लौ प्रखरतर !
प्यार क्या इतना असुन्दर !

प्यार का गल-हार तोड़ा क्रूर जग ने
फेंक डाला मोतियों को दूर जग ने

मैं समझ पाया न क्यों जग क्रूर-निष्ठुर !
प्यार क्या इतना असुन्दर !

११।११।१९७२

अश्रु - भींगे गीत

दर्द के ये अश्रु-भीगे गीत गाता ही रहूँगा
सुई-सी चुभती व्यथा की पीत-वर्णा दूबियों के शोश पर मैं—
हर सुबह इन आँसुओं के घट सजाता ही रहूँगा
गीत, गाता ही रहूँगा

रूठ कर उजली हँसी ने
ओढ़ ली काली अमावस
चन्द्र-मुख पर धर हथेली—
श्याम घन की, हँसा पावस

किन्तु, जब तक साथ देगी पीर को सौदामिनी मैं—
श्याम निशि में भी दिशा का पता पाता ही रहूँगा
गीत गाता ही रहूँगा

१२ ११।१९७३

तुम्हारी आँखें

कैसे जाऊँ भूल भला मैं वे प्यारी रतनारी आँखें
रह - रह हृदय वेध जाती हैं मोह - विहीन तुम्हारी आँखें

यों तो बहुत भली लगती है
गुमसुम आधी रात अँधेरी
मेरे साथ हँसी - रोयी हैं
अम्बर की आँखें बहुतेरी

लेकिन उन लाखों आँखों में मिली न मुझे एक भी ऐसी
सारी - सारी रात गगन में ढूँढ़-ढूँढ़ कर हारी आँखें

पलकों के उठते ही रस के—
सातों सिन्धु छलक उठते थे
मेरे मन का आँगन ही क्या—
सातों स्वर्ग झलक उठते थे

कैसे भूलूँ ओ मृगनैनी ! उन मद भरे दृगों की पुलकन
खंजन जैसे नयन कहूँ या कहूँ अमृत की झारी आँखें

लोचन-छवि से आलोकित हो
मुझमें जीवन बोल रहा था
मंद - मंद आलोक नयन का
प्राणों में मधु घोल रहा था

तुमने जब से आँखें फेरीं, मन पर छायी रात अँधेरी
अंतहीन बन गयी अमावस वे कारी कजरारी आँखें

७।४।१९७५

डर रहा हूँ

डर रहा हूँ आँसुओं की इस उफनती भीड़ में मृदु—
वेदना की गीत-जननी व्यंजना ही खो न जाये

गीत जो मेरे अधर पर धर दिये तुमने सजा कर
भाव गीतों के भरे मन में ठुमुक पायल बजा कर
सृष्टि का संताप सारा जो हृदय में हैं समेटे
वेदना की मूर्छना के वे सरल सुकुमार बेटे

भय मुझे है कौन फिर मेरी व्यथा पर कान देगा
सिसकियों के शोर से बहरे कहीं वे हो न जायें

प्रेम का इतिहास लपटों से लिपट कर रो रहा है
लाश अपनी ही स्वयम् विश्वास काँधे ढो रहा है
शब्द-कोशों में प्रणय के अर्थ सारे छद्म-वेशी
प्रीति-शव विरहांक में लेटा युगों से मुक्त-केशी

दिल धड़कता है—प्रणय के शेष स्मृति-दंश दाहक
काल की जलती चिता के अंक में थक सो न जायें

१६।१।१९७६

वे मादक, मदमाती आँखें

कैसे जाऊँ भूल भला मैं, वे मादक, मदमाती आँखें
जीवन के मरु पर पीयूषी घट के घट छलकाती आँखें

तिरछी चितवन से घायल
मन के पंछी को सुख का मिलना
डबडब आँखों में पुलकाकुल
प्राणों के सरसिज का खिलना

बांके - तिरछे आखर वाली अमर प्रणय की पाती आँखें

जब - जब कोई नात न मानी
हुई कभी जब खींचा - तानी
बहा ले गया तब - तब मुझको
कजरारी आँखों का पानी

चैन नहीं पाता था जब तक देख न लूँ मुस्काती आँखें

उन आँखों में बड़ी चुभन थी
प्रिय - दर्शन की मुग्ध लगन थी
प्राणों का थीं सहज समर्पण
मेरे कवि - जीवन का धन थीं

पलकों का छवि - घूँघट डाले झुकी - झुकी शर्माती आँखें
मेरे प्राणों के प्रदीप की ज्योति लुटाती बाती आँखें
कैसे जाऊँ भूल भला मैं, वे मादक, मदमाती आँखें

२४।७।१९७६

नियमों के तीर बरसते हैं

इस रंग - बिरंगी दुनिया में जीना मुश्किल, मरना मुश्किल
काँटे ही काँटे हैं मग में, पग - पग पर पग धरना मुश्किल

मदिरालय के दरवाजों पर प्यासे भौंरों का जमघट है
जो खुशनशीब भीतर पहुँचे दो घूँट उन्हें भरना मुश्किल

है प्यार - प्रीति ही परमेश्वर—सारे मजहब चिल्लाते हैं
पर सच तो यह है भूले से भी प्यार यहाँ करना मुश्किल

आदर्शों की चट्टानों के बाँधे जाते तट - बंध यहाँ
फिर छिछले - छिछले पानी में दिलवालों का तिरना मुश्किल

पिंजरों से पंछी भागें तो नियमों के तीर बरसते हैं
छलनी हो जाती है काया, उड़ना मुश्किल, गिरना मुश्किल

दर्दों से राहत पाने की सोचें तो जग बनता आँधी
'बन नीर भरी दुख की बदली' प्रिय-शशि-मुख पर घिरना मुश्किल

१५ अगस्त १९७६

सीख गया आँसू मुस्काना

ओ पीड़ा की राजकुमारी ! मेरे सपनों में फिर आना
प्यासी नील झील नयनों की, भरो बदरिया-सी झर जाना
ओ पीड़ा की राजकुमारी !………

तुम तो बस बिजली-सी चमकी
प्रिय - स्मिति-सी कौंधी - दमकी
किन्तु, उसी छोटे-से क्षण में
मुझको निधियाँ मिलीं भुवन की
क्षणिक छवि-परस का अब भी है मन-दर्पण पर बिम्ब सुहाना
ओ पीड़ा की राजकुमारी !………

अश्रु - वसन में लिपटी - सिमटी
तुम कितनी सुन्दर लगती हो
सो जाता जग, पर तुम शत-शत—
डबडब आँखों में जगती हो
सतरंगी अधबुने कफ़न में बुन - बुन दुख का ताना-बाना
ओ पीड़ा की राजकुमारी !………

तुमसे अतिशय बल मिलता है
दुर्दिन को सम्बल मिलता है
उड़ जाती चिन्ता भौंरों-सी
प्राणों का शतदल खिलता है
क्षण भर के ही दरस-परस से सीख गया आँसू मुस्काना
ओ पीड़ा की राजकुमारी !………

जनम-जनम की प्यास टीस की
एक तुम्हीं से बुझ पाती है
मेरे जीवन के दियले की—
उकस-उकस जाती बाती है
आने वाले जन्मों के सपनों को भी यों ही दुलराना
ओ पीड़ा की राजकुमारी !··· ········

१५ अगस्त १९७६

यह घूँघट का चाँद सुहाना

यह जीना भी क्या जीना है
सहना है दुख-भार हर घड़ी, ग़म खाना; आँसू पीना है
यह जीना भी क्या जीना है

प्यार-प्रणय की बात न करना
छाया से भी डरते रहना
प्रेम-नगर की डगर बुरी है
सौ धारों की एक छुरी है
भूले से भी पग मत धरना
तड़पोगे, रोओगे वर्ना
नींद चुरा ली लाखों आँखों की, उनका सरबस छीना है
यह जीना भी क्या जीना है

मुश्किल है मुश्किल रे पाना
यह घूँघट का चाँद सुहाना
ऊपर वाले चंदा पर तो—
लगा हुआ है आना-जाना
पर इस शशि पर मन मचला तो—
नहीं लगेगा ठौर-ठिकाना
वज्रों की दीवारें झूठीं, मत समझो घूँघट झीना है
यह जीना भी क्या जीना है

धरम-करम की बातें होंगी
आदर्शों की घातें होंगी

दिन तो होंगे धुँधले-धुँधले
दुख की काली रातें होंगी
अन्तर लपटों का घर होगा
बे मौसम बरसातें होंगी
चख कर देखो—अमृत मात है, किन्तु, हलाहल से भीना है
यह जीना भी क्या जीना है

१५ अगस्त १९७६

बासवदत्ता औरं चाँद की जलन

अतिशय उदास, चौंका-चौंका-सा भ्रमित मयंक गगन का
यह कौन ज्योत्सना लुटा रही है मुक्त-हस्त धरती पर
मैं सह न सकूँगा और अधिक लावण्य-तेज आनन का
अंगों से झरती सुधा-धार अविरल, अमंद जगती पर
जिसका मुख मुझसे भी दूना-दूना निखार छिटकाता
नागिन-सी काली लटों बीच मृदु मंद-मंद मुस्काता
तारों से पूछ थका तो कवि के निकट पूछने आया
"यह कौन मित्र! यों उतर धरा पर झूम रही है माया
यमुना के श्यामल जल में तल तक जिसका बिम्ब झलकता
जिसकी निदाघ सुन्दरता से रति-पति का हृदय दहकता
रातों की नींद गयी, दिवसों में भी तो प्राण सुलगते
ईर्षा के मारे मलिन हुई जा रही स्निग्ध सुन्दरता
लगता है मेरी ओर न धरती रातों को हेरेगी
अपना सारा भंडार प्यार का तन्वंगी को देगी
तुम तो हो मेरे मित्र, तुम्हारे आड़े हरदम आया
प्रिय! सदा प्रेयसी-मुख को तुमने मुझ-सा ही बतलाया
तारों का यह दल तो केवल बस झिलमिल करने भर का
सोचा--आश्रय लूँ अणु-अणु वासी विश्वासी कविवर का
इसलिये यहाँ चुपके से छिप कर श्याम मेघ में आया
पा सकूँ चैन यदि इस रहस्य की तनिक छू सका छाया।"
चिन्तित, उदास निशि-पति को कवि ने हँसती आँखों देखा
उग रही दूधिया शशि-दृग में ईर्षा की काली रेखा
बोला कवि--"बंधु! उर्वशी, रंभा और मेनका ने मिल
वारा सारा निज रूप, हँस रही 'वासवदत्ता' खिल-खिल

यह अतिशय ऐश्वर्यशालिनी है धरती की नारी
इसके चरणों पर लोट-लोट जाते सारे संसारी
वेश्या है, विधि ने रचा इसे सौन्दर्य-कोष कर रीता
तुम नभ के हो हे बंधु! और यह पूर्णचन्द्र जगती का
चिन्ता न करो, तुम शाश्वत हो, यह मृग-मरीचिका, छल हैं
तुम तो हो अमृत - प्रकाशी, यह असुरों की सुरा प्रबल है
हे मित्र! अस्तु, लौटो, धरती को सुधा - धार से सींचो
निज अमर ज्योत्सना - उदधि - नीर को शत - शत करों उलीचो
आयेगा दिवस एक ऐसा धरती का विधु न रहेगा
हाँ, यह होगा इतिहास कथाएँ इसकी सदा कहेगा
सशरीर युगों तक तुम ओ मेरे मीत! रहो — चमकोगे
'वासवदत्ता' का तो केवल बस नाम - रूप दमकेगा"
बादल का घूँघट उलट, चाँद फिर अधर धार में लटका
औ' इधर ज्योति से सराबोर कर रहा चाँद घूँघट का
फिर रहीं उँगलियाँ वीणा पर, स्वर - लहरी दिशि - दिशि छायी
'वासवदत्ता' ने झूम - झूम मधु की गागर छलकायी
हैं दसों दिशाएँ स्तब्ध, सुधा - रस - स्नात धरा होती है
धरती तो धरती, अमर सुरपुरी भी सुध - बुध खोती है

× × ×

बीती आधी रात, चाँद महलों के ऊपर आया
तभी पियूषी विधु - वदनी ने अंतिम राग सुनाया
बहुत देर तक रही गूँजती वीणा की स्वर - लहरी
पहरे पर सारे सतर्क हो गये चतुर्दिक प्रहरी
घंटा - बारह बार निनादित हुआ, रोशनी सिमटी
चख कर अंतिम रस - बूँद विसुध जग रति रानी के घट की
सुख - सन्नाटा आधी रजनी का छाया, दुनिया सोयी
श्लथ वीथि - वीथि 'वासव' के ही सुख के सपनों में खोयी

× × ×

अलसायी-सी लेती अँगड़ाई, पुलक बजाती चुटकी
पी रही केलि - श्लथ 'वासवदत्ता' वायु प्रात की टटकी

आधी खिसकी कंचुकी, झाँकते अहरह पीन पयोधर
वेणी वक्षों के बीच झूलती ज्यों पहरे पर फणिधर
वस्त्राभूषण सब अस्त-व्यस्त, सलवटों भरा बिस्तर है
लगता है रहा केलि-रत सारी निशि कोई किन्नर है
नर की थी पहुँच नहीं, सुर ही किन्नर बन कर आते हैं
पद पर न्यौछावर कर कुबेर का कोष, तृप्ति पाते हैं

× × ×

धो कर गुलाब जल से रतनारी आँखें, वस्त्र सँभाले
कुहकी 'वासवदत्ता'—"पय के शत घट लाओ हे बाले!
मैं दूधों भरी तलैया में पहले तैरूँगी जी भर
तू जा, शृंगार-कक्ष में रख चन्दन-कस्तूरी-केशर
है नयी-नयी तू, काज निगोड़ी! सभी बताने होंगे
री! केलि-कक्ष चौंसठ महलों के भी दिखलाने होंगे
उफ! जब से गयी 'सुनयना' ले अवकाश, बहुत झंझट है
हैं तो दासियाँ असंख्य किन्तु, वे मुई चपल, नटखट हैं
'मन्दाकिनी' नाम है तेरा, मन्थर वैसी ही है
नख-शिख तू अपनी सहोदरा 'नयना' जैसी ही है
यहाँ कंचुकी पहन घूमने की है सख्त मनाही
तने-तने गोरे उरोज हों, घुंडी पर हो स्याही
वस्त्र पहनने होंगे तुझको भी नाभी से नीचे
चम्पकवर्णी रोमावलि मदिरा के कलश उलीचे
नहीं मुक्तकेशी रहना, वेणी में सुमन सजाना
मणियों की करधनी, स्वर्ण के नूपुर सदा बजाना
सुनती नहीं? सहस्रों नूपुर सदा बज रहे ऐसे
'वासव' के महलों में रति का रास रचा हो जैसे
देख, मुझे रुचिकर दाड़िम कन्धारी, दाँतों जैसे
उत्तरीय मुझको पसन्द बगुलों की पाँखों जैसे

श्वेत रुई के पहलों वाला जिनका नरम बिछौना
रुचिकर हैं अंगूर-चमन के, मात्र जानती 'नयना'
एक असर्फी नित्य दाल में छौंकी जानी ही है
मेरे लिए सुरा जैसे यमुना का पानी ही है
मलयागिरि-चन्दन का रोगन कुन्तल में रमता है
पवन मलयवाही सुवास के हेतु यहाँ थमता है
अरुण एड़ियों में सुहास भरती हूँ रचा महावर
कर्पूरी काजल से नयनों के सँवारती तेवर
माथे पर नौलक्खी हीरे की बिंदी धरती हूँ
इसी भाँति मैं नित्य सांध्य-श्रृङ्गार किया करती हूँ
'मन्दाकिनी' चकित, विस्मित-सी लौटी कर सिर नीचा
नग्नकाय 'वासवदत्ता' ने तन पर दुग्ध उलीचा
रहा हेरता तृषित दृगों से चाँद गगन का फीका
विहँस इधर दूधिया-धार में डूबा शशि धरती का

'वासवदत्ता'—खंड-काव्य से
१।१।१९७४

ज्योति-उदधि लहरें

ज्योति - उदधि लहरे
झलमल अमृत - सिन्धु लहरे
तले दबा भूगोल, चतुर्दिक नीरवता है
अनहद नाद वर्ण - कुहरों में यों बजता है
जैसे स्वर्ण - किरण पर कोई उँगली फेरे
स्वयम् ब्रह्म आत्मा को हो बाँहों में घेरे
नासाग्रे केन्द्रित मन अहरह लहर - लहर छहरें
ज्योति - उदधि लहरे

आया ज्वार, बूँद में परिणत हुआ सिन्धु, तट चूमा
षट-रिपु, अष्ठ-पाश में बँध कर दर-दर भटका-घूमा
पद्मासन पर बैठ विकल मन को लहरों में डाला
टूटी साँकल जनम - मरण की, खुला मोह का ताला
अखिल-निखिल पर अमृत-पुरुष का स्वस्तिक-ध्वज-फहरे
ज्योति - उदधि लहरे

९ बजे प्रातः
ध्यान में
१।१।१९७५

राजस्थानी पुस्तक-मन्दिर
बेतिया